वार्षिक रु. १००, मूल्य रु. १२
विवेक ज्योति
वर्ष ५४ अंक ६ जून २०१६
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

जून २०१६

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५४
अंक ६

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

भगवान श्रीरामकृष्ण के सार्वजनीन मन्दिर का यह दृश्य रामकृष्ण मठ, पुणे का है। १९८४ में यह आश्रम रामकृष्ण मठ, बेलूड़ का शाखा-केन्द्र हुआ। २००२ में रामनवमी के पावन अवसर पर रामकृष्ण संघ के तत्कालीन संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज के कर-कमलों द्वारा इस भव्य मन्दिर का उद्घाटन हुआ। आश्रम द्वारा निम्नलिखित सेवाकार्यों का संचालन होता है।

(१) मन्दिर में विभिन्न अवसरों पर व्याख्यान होते हैं। साप्ताहिक प्रवचनों के साथ-साथ विभिन्न अवसरों पर आध्यात्मिक शिविर आयोजित किए जाते हैं।

(२) शैक्षिक स्तर पर समाज के अल्प-संसाधन बालकों के लिए बालक संघ की स्थापना की गई है, जिसमें बच्चों को उनके पाठ्यक्रम की पुस्तकों के अलावा धार्मिक और सांस्कृतिक शिक्षा भी दी जाती है। आश्रम के संगणक केन्द्र में विद्यालय एवं महाविद्यालय के विद्यार्थियों को कम्प्यूटर सम्बन्धित अनेक विषय सिखाए जाते हैं। इसके अलावा आश्रम में स्टडी सेन्टर की सुविधा है, जिसमें विद्यार्थी अपने पाठ्यक्रम की पुस्तकें आश्रम के पवित्र और नीरव वातावरण में पढ़ सकते हैं। युवाओं के लिए युवा-सम्मेलन आदि कार्यक्रम का भी आयोजन किया जाता है।

(३) आश्रम में बहु-मंजिल चिकित्सा सेवा केन्द्र है, जिसमें कम दरों पर जनसाधारण के लिए चिकित्सा-सेवा प्रदान की जाती है।

(४) आश्रम के मोबाइल मेडिकल यान द्वारा गाँवों में चिकित्सा सेवा प्रदान की जाती है। ग्रामीण- उन्नयन हेतु शैक्षिक और सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किए जाते हैं।

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी के दौरान भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५३ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर यह 'ज्योति' भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाएँ पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **— व्यवस्थापक**

जून माह के जयन्ती और त्योहार

०७ महाराणा प्रताप जयन्ती
२० स्नान यात्रा, कबीर जयन्ती

विवेक-ज्योति के आजीवन सदस्यों की सूची

१६११. श्री देवरंजन लहरी, लवकुश नगरी, वदसर, वडोदरा (गुज.)
१६१२. श्री दुर्गेश वाढेर, १६/७९६, जेल रोड, रायपुर (छ.ग.)
१६१३. डॉ. राजेश्वर पटेल, नवापारा (राजिम), जि.-रायपुर (छ.ग.)
१६१४. श्री अरविन्द नारायण सिंह, आलमबाग, लखनऊ (उ.प्र.)
१६१५. श्री अर्चित गुप्ता, ४५२, इंदिरापुरम्, गजियाबाद (उ.प्र.)
१६१६. श्री सुजीत मोजा, गार्डनविला, सेक्टर-४३, गुड़गाँव (हरि.)
१६१७. श्री प्रतीक पाण्डेय, ७२५, इंदिरापुरम, गजियाबाद (उ.प्र.)
१६१८. श्रीमती विनीता सक्सेना, २५ ज्ञानकुंज, लक्ष्मीनगर, दिल्ली
१६१९. श्रीमती करुणामयी देवी, श्रीअरविन्द आश्रम, नई दिल्ली
१६२०. स्वामी विवेकानन्द स्टडी सेन्टर,ओल्डसिटी, अकोला (महा.)
१६२१. अधीक्षक, सेन्ट्रलजेल, वाचनालय, जेलरोड, रायपुर (छ.ग.)
१६२२. स्वामी शिवानन्द, महर्षि मेंहीसाधना आश्रम,अररिया (बिहार)
१६२३. सुश्री सुलेखा रॉय, रामकृष्ण आश्रम, मुजफ्फरपुर (बिहार)
१६२४. श्रीमती काजोल साहा, खेरली फाटक, कोटा (राजस्थान)
१६२५. श्री प्रवीण कुमार गौराहा, राजकिशोर नगर, बिलासपुर (छ.ग.)
१६२६. डॉ. क्षमाशील गुप्ता, १-ए, छावनी रोड, ब्यावर (राजस्थान)
१६२७. श्री प्रफुल्लचंद्र बी. देसाई, रावपुरा, वडोदरा (गुजरात)
१६२८. सुश्री वनिता ठक्कर, सहकार नगर, वडोदरा (गुजरात)
१६२९. श्री राहुल अग्रवाल, अधिवक्ता, कैलाशपुरी, आगरा (उ.प्र.)
१६३०. डॉ. सौरभ श्रीवास्तव, एस/७ विशालनगर, रायपुर (छ.ग.)
१६३१. सेन्ट्रल लाइब्रेरी, विवेकानन्द यूनिवर्सिटी, बेलुड़-मठ, हावड़ा
१६३२. श्री विजय मित्तल, मित्तल मार्केट, रोहतक (हरियाणा)
१६३३. श्री बी.एल.सूर्यवंशी, वेद नगर, नानाखेड़ा, उज्जैन (म.प्र.)
१६३४. श्रीमती कमला ठाकुर, उदया सोसा., टाटीबंध,रायपुर (छ.ग.)
१६३५. श्री संजय सिंह परिहार, मठपारा, राजनांदगाँव (छ.ग.)
१६३६. श्री सुशील दीक्षित, चंद्रा कॉलोनी, राजनांदगाँव (छ.ग.)
१६३७. श्रीमती सुजाता चटर्जी, जोरबाग, लोधी रोड, नई दिल्ली
१६३८. प्राचार्य, आर्टस एंड कॉमर्स कॉलेज, कछल, जि. सूरत (गुज.)
१६३९. लााइब्रेरी, रा.मिशन विवेकानन्द कॉलेज, मयलापुर, चेन्नई
१६४०. श्री नथमल सोमानी, सनसिटी उल्टाडांगा, मेनरोड, कोलकाता
१६४१. श्री हरि शर्मा, एकता चौक, होशंगाबाद (म.प्र.)
१६४२. प्राचार्य, नर्मदा वैली अकादमी, होशंगाबाद (म.प्र.)
१६४३. डॉ. राजेन्द्र गौर, जुमेराती चौक, होशंगाबाद (म.प्र.)
१६४४. श्री आशुतोष शर्मा, सेमेरिटन स्कूल, मालाखेड़ी, होशंगाबाद म.प्र.
१६४५. श्री संतोष कुमार अग्रवाल, मंगलवाड़ा, होशंगाबाद (म.प्र.)
१६४६. सुश्री अनीता शिंदे, रिवेरा टाऊन, भोपाल (म.प्र.)
१६४७. श्री आर. एस. श्रीवास्तव, बायपास रोड, भोपाल (म.प्र.)
१६४८. डॉ. आराधना गुप्ता, रत्नबांधा रोड, धमतरी (छ.ग.)
१६४९. श्रीमती कविता शर्मा, चाइबासा, वेस्ट सिंहभूम (झारखण्ड)
१६५०. डॉ. हरिशकुमार कश्यप, म.न.३३, बैगापारा दुर्ग (छ.ग.)
१६५१. श्रीरामकृष्ण आश्रम, पखाजुर, जिला - कांकेर (छ.ग.)
१६५२. प्राचार्य, शा.बी.एड.कॉलेज, कछल, महुआ,जि.-सूरत (गुज.)
१६५३. श्री ए. आर. तिवारी, बायपास रोड, अमरावती (महा.)
१६५४. श्री अभिषेक आनन्द, म.न.५, जंगपुरा एक्सटेंशन, नई दिल्ली
१६५५. श्री प्रदीप विठ्ठल देशपांडे, १/१०५७, हुडको, भिलाई (छ.ग.)
१६५६. श्री पुष्कल गर्ग, नया बाजार, लश्कर, ग्वालियर (म.प्र.)
१६५७. श्री राजेन्द्र लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, श्यामनगर, हरदा (म.प्र.)
१६५८. श्री शिवकुमार चौरसिया, इस्माईलगंज, फर्रूखाबाद (उ.प्र.)
१६५९. श्री कृष्णा मुरारी मित्तल, बेगम बाजार, हैदराबाद (आ.प्र.)
१६६०. श्री मोतीलाल वर्मा, पुरानी बस्ती, तिल्दा,जि.रायपुर (छ.ग.)
१६६१. श्रीमती संध्या चौबे,११०, दीपक नगर, नागपुर (महा.)
१६६२. श्री धनुर्जय पटेल, कुम्हारी (बसना) जि. महासमुंद (छ.ग.)
१६६३. श्री केशव वशिष्ठ,६०१/१३, से.-२७, पंचकुला (हरियाणा)
१६६४. प्रो. आभारूपेन्द्र पाल, सी-१, शंकर नगर, रायपुर (छ.ग.)
१६६५. श्रीमती शारिका रैना,२५-ए/३ अपररूपनगर, जम्मू (ज.क.)
१६६६. श्री एस. एस. ठाकुर, श्रीनाथ आयुर्वेद, रायपुर (छ.ग.)
१६६७. स्वामी कृष्णानन्दपुरी, रामकृष्ण पंचवटी आश्रम,बारमेर (राज.)
१६६८. कु. राधिका द्विवेदी, रामावेली, पो. बोदरी, बिलासपुर (छ.ग.)
१६६९. श्री बाबूलाल चौबीसा,ग्रा-पो. हिन्ता, जिला-उदयपुर (राज.)
१६७०. प्राचार्य, शा. आदर्श स्कूल, जैतपुरा, राजसमन्द (राज.)
१६७१. श्री संजीव तिवारी, १८३-सी., राजेन्द्रनगर, इन्दौर (म.प्र.)
१६७२. श्रीमती पुष्पा शर्मा, के-९ शिवाजी वार्ड, सागर (म.प्र.)
१६७३. श्री बी.के. शर्मा, म.न.-५२०, सुन्दरनगर, रायपुर (छ.ग.)
१६७४. श्री प्रसाद व्यास, म.न.-११३, विशालनगर, इन्दौर (म.प्र.)
१६७५. श्री रामकुमार गोयल, विश्वकर्मा नगर-२, जोधपुर (राज.)
१६७६. श्री शिव प्रसाद यादव, रूपकाठी, राजनांदगाँव (छ.ग.)
१६७८. शिवकुमार भोसले, डगनिया, सुन्दरनगर, रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ५४ जून २०१६ अंक ६

संस्कृत वाङ्मय में सर्वधर्मसमन्वय मन्त्र

यं शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो,
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैन शासनरताः कर्मेति मीमांसकाः,
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ।।

– जिस परमेश्वर को शैव मतावलम्बी 'शिव' के रूप में उपासना करते हैं, वेदान्तवादी 'ब्रह्म' नाम से पुकारते हैं, जिस परमात्मा को प्रमाण में पटु बौद्ध लोग 'बुद्ध' के रूप में ध्यान करते हैं, जिसे नैयायिक 'कर्ता' नाम से अभिहित करते हैं, जैन धर्मावलम्बी जिसे 'अर्हत्' नाम से अभिव्यक्त करते हैं और मीमांसक जिसे 'कर्म' नाम से जानते हैं, वे समस्त चराचर के स्वामी हरि, परमात्मा आप सबके मनोभिलषित फल को प्रदान करें।

ॐ असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

हे परमात्मा ! हमें असत् मार्गों से हटा कर सन्मार्गों पर चलने की शक्ति दें ! हे प्रभो ! हमें अन्धकार से विमुख कर प्रकाश की ओर ले चलें ! हे जगदीश्वर ! हमें मृत्यु से हटा कर अमरत्व की ओर प्रेरित करें। हे स्वामी ! सर्वत्र सब प्रकार से सुख, शान्ति और मंगल हो !

पुरखों की थाती

यत्र तत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ।
अक्षयाँल्लभते लोकान्यदि क्लैब्यं न गच्छति।।५०४।।

– शत्रु से घिरा वीर यदि कायरता न दिखाए, तो वह चाहे जहाँ भी मारा जाय, वह अक्षय लोकों को प्राप्त करता है ।

या हि प्राण-परित्याग-मूल्येनाऽपि न लभ्यते ।
सा श्रीर्नीतिविदं पश्य चञ्चलाऽपि प्रधावति ।।५०५।।

– देखो, जो लक्ष्मी प्राण देने पर भी प्राप्त नहीं होती, वह चंचल होती हुई भी नैतिक व्यक्ति के पास स्वयं ही दौड़ी चली आती है ।

यथा कालकृतोद्योगात्कृषिः फलवती भवेत् ।
तद्वन्नीतिरियं देव, चिरात्फलति न क्षणात् ।।५०६।।

– हे राजा ! जैसे समय पर उद्योग करने से खेती कुछ बाद में ही फल देती है, वैसे ही यह राजनीति भी तत्काल नहीं, बल्कि कुछ काल बाद ही फलवती होती है ।

यद्यपि उपायाश्चत्वारो निर्दिष्टाः साध्यसाधने ।
संख्यामात्रं फलं तेषां सिद्धिः साम्नि व्यवस्थिता ।।५०७।।

– यद्यपि कार्यसिद्धि के लिए साम, दाम, दण्ड और भेद, ये चार उपाय बताए गये हैं, परन्तु ये केवल गिनती के लिए ही हैं । वस्तुतः कार्य तो 'साम' (समझाने) से ही होती है ।

यच्च कामसुखं लोके, यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षय-सुखस्यैते, नार्हतः षोडशीं कलाम् ।। ५०८।।

– कामनाओं की पूर्ति में जो सुख है तथा अन्य प्रकार के भी जो दिव्य महान सुख हैं, वे सभी तृष्णा के नाश से होनेवाले सुख की तुलना में उसके १६वें अंश के बराबर भी नहीं है । (महाभारत, शान्तिपर्व)

विविध भजन

धन्य है तेरो भाग

स्वामी रामतत्त्वानन्द

रे धनी धन्य है तेरो भाग।
भिक्षा लेने द्वार तुम्हारे, प्रभु आये हैं आज।।
मुण्डित मस्तक श्वेत वसन फैलाकर झोली।
भिक्षा दे माँ, हे धनी माँ, बोले मधुरी बोली।।
दाता सबका बना भिखारी, द्वारे ठारे आज।।१।।
सत्यनिष्ठ बाल गदाई आये धनी के द्वार।
कामारपुकुर पुण्यभूमि में लीला कियो अपार।।
जिनके वश में तीन लोक हैं प्रेम बस हुए आज।।२।।
आँखों में प्रेमाश्रु छलकी होठों में मुस्कान।
धन्य हुई धनी भिक्षा लेने द्वार आये भगवान।।
तीन पग त्रिभुवनधारी लिए मुट्ठीभर अनाज।।३।।
त्रेतायुग में शबरी का प्रभु खायो जूठन बेर।
नवधा भक्ति पान करायो, कियो निज पद चेर।।
सोइ पद बिन माँगे पायी, धनी लोहारिन आज।।४।।
शेष जिनका गुण गावै, सन्तन ध्यान लगावे।
प्रेमाधीन हो सोइ प्रभुवर, धनी भाग जगावे।।
जनम जनम के तप के फल को, पायो धनी आज।।५।।

जग राम सियामय देखो

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

गुण दोष से दृष्टि हटाकर, जग राम-सियामय देखो।
मन में विश्वास जमाकर जग राम सियामय देखो।।
है अनेक में एक को होना, जैसे आभूषण में सोना।
समता का भाव जगाकर, जग राम सियामय देखो।।
वही दृश्य है वही है द्रष्टा, वही सृष्टि है वही है स्रष्टा।
गुरुज्ञान का दीप जलाकर, जग राम-सियामय देखो।।
अपने अमित रूप प्रगटाये, वही हैं छुपकर सामने आये।
सत्संग की गंगा नहाकर, जग राम-सियामय देखो।।
जड़ चेतन सबका तन धारे, प्रगटे सीताराम हमारे।
प्रभु प्रेम में अश्रु बहाकर, जग राम-सियामय देखो।।
जन राजेश तजो मनमानी, सीयाराममय सब जग जानी।
तुलसी की वाणी गाकर, जग राम-सियामय देखो।।

प्रभु मुझको न ठुकराना

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

लिया हूँ अब शरण तेरी, प्रभु मुझको न ठुकराना।
बहुत जन्मों से भटका हूँ, प्रभु नहीं और भटकाना।।
माया का यह तेरा संसार, मुझको अति सताया है,
गया सबके यहाँ लेकिन, न कोई काम आया है।
है केवल आसरा तेरा, प्रभु मुझको न तड़पाना।।
पड़ा संकट जब भक्तों पर, तो दौड़े तुमही आये थे,
कभी की दैत्यवध तुमने, कभी तो चिर बढ़ाये थे।
अभी मैंने पुकारा है, प्रभु तुम भूल मत जाना।।
तेरी सन्तान होकर भी गया था भूल मैं तुझको,
शुद्ध स्वरूप पाकर भी किया मलीन मैं खुद को।
ले अपनी गोद में मुझको, प्रभु पावन बना देना।।
नहीं मेरा कोई जग में केवल तुम ही हमारे हो,
नहीं माता-पिता-बन्धु केवल तुम ही सहारे हो।
आसक्ति न रहे जग में, प्रभु निज भक्ति दे देना।।
सनातन नित्य तुम ही हो अखण्डाद्वैत तुम ही हो,
सच्चिदानन्द सागर हो, सगुण निर्गुण भी तुम ही हो।
मेरे सब दुख हरने को दयामयी माता बन आना।।

हमारी काली माँ

जितेन्द्र कुमार तिवारी

निशि-दिन रक्षा करें हमारी काली माँ।
मति की जड़ता हरें हमारी काली माँ।।
शक्तिदायिनी दुखनिवारिणी जगमाता।
भक्ति हृदय में भरें हमारी काली माँ।।
दुष्टजनों के लिए भयानक दिखें सदा।
औ सुजनों को वरें हमारी काली माँ।।
आदिशक्ति हैं खप्परवाली रुद्राणी।
नहीं शत्रु से डरें हमारी काली माँ।।
रक्तबीज सम असुरों के भी प्राण हरें।
नहीं वचन से टरें हमारी काली माँ।।

जीवन में आनन्द का अनुसन्धान

क्या जीवन एक अबूझ पहेली है?

कोई कहते हैं कि जीवन दुखमय है। कोई कहते हैं कि जीवन संघर्षमय है। कोई कहते हैं कि जीवन सुख-दुख, कड़वे, तीखे, मीठे सबका मिश्रित रूप है, जो व्यक्ति को अनुभवी बनाता है। उसे परिपक्व बनाता है। कोई कहते हैं, यह जीवन निर्झर है और जीवन में आनन्द ही इसका पानी है –

यह जीवन क्या है निर्झर है,
मस्ती ही इसका पानी है।
सुख दुख के दोनों तीरों से,
चल रहा राह मनमानी है।।

जीवन-सरिता में आनन्द और सुख का जल प्रवाहित होता रहता है। कोई कहते हैं कि जीवन एक अबूझ पहेली है। इसे समझना बहुत कठिन है। समझते-समझते पूरा जीवन ही चला जाता है, फिर भी समझ में नहीं आता। कोई कहते हैं कि जीवन संवेदनामय एवं स्वसंवेद्य है, आदि, आदि।

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में जीवन क्या है?

जीवन के सम्बन्ध में भारतीय संस्कृति के उत्कृष्ट प्रवक्ता, युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं – ''दमनकारी परिस्थितियों में चेतना का विकास ही जीवन है।

''आत्मा के स्तर का जीवन ही सच्चा जीवन है, अन्य सब स्तरों पर का जीवन मृत्युस्वरूप है, व्यर्थ है। यह सम्पूर्ण जीवन एक व्यायामशाला है। यदि हम सच्चे जीवन का आनन्द लेना चाहते हैं, तो हमें इस जीवन के परे जाना होगा।[१] ''जीवन कोई आसानी से चलने वाली सरल वस्तु नहीं है। यह एक सम्मिश्रित कार्य है, बहिर्जगत और अन्तर्जगत का घोर संघर्ष ही जीवन कहलाता है।''[२]

हिन्दी कोशकार जीवन शब्द का अर्थ लिखते हैं – जीवित रहना, प्राण-धारण, प्राणी, जीवन का आधाररूप वस्तु, परमात्मा, प्राणप्रद, जल, वायु, पुत्र अस्तित्व और आनन्द आदि।

जीवन सहज बोधगम्य है, अनुभवगम्य है

जीवन का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से यह प्रतीत होता है कि जीवन उपरोक्त सब कुछ है, लेकिन सब कुछ होते भी उसके परे भी है, जीवन विशेष है। उसके बाद भी जीवन के अस्पर्श पहलू हैं, जहाँ जाकर सारे द्वन्द्व, संवेदना, पहेली, संघर्ष उसमें समाप्त हो जाते हैं, वही आत्मपरक, आत्मस्थ जीवन है, तब जीवन सरल और सहज हो जाता है। तब जीवन आनन्दमय हो जाता है।

जीवन एक शाश्वत पहेली

जीवन एक नाटक और यह संसार एक नाट्यशाला है। भगवान लीलाकर्ता और यह संसार उनकी लीलाभूमि है। जीवन अद्‌भुत और विलक्षण है। विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि जीवन एक समग्र एवं शाश्वत पहेली है, जिसका हल निकाल लेने पर मनुष्य-जीवन सार्थक, पूर्ण एवं परितृप्त हो जाता है।

अरे इतनी-सी बात थी !

जैसे आकाश के अतिरिक्त उसकी और कोई उपमा नहीं है, आकाश स्वयं अपने आप में उपमेय है, उसी प्रकार जीवन जीवन जैसा है। इसका दूसरा कोई उपमान नहीं है। यह परम आनन्दमय है। जैसे कठिन पहेली के रहस्य को स्पष्ट समझा देने से पहेली समझ में आ जाती है और तब लगता है, 'अरे इतनी-सी ही बात थी।' तब व्यक्ति अपने आप पर ही हँसने लगता है, 'अरे, मैं इतनी-सी बात नहीं समझ सका।' ठीक ऐसे ही जब कोई जीवन के अन्तरंग तत्त्वों, उसके रहस्यात्मक सूत्रों को समझा देता है, तब जीवन आसान हो जाता है, आनन्दमय हो जाता है। तब व्यक्ति स्वयं अनुभव कर लेता है। तब व्यक्ति के जीवन के द्वंद्व और संघर्ष पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं। तब वह परम आनन्दमय स्रोत से जुड़कर परमानन्द सागर में विहार करने लगता है।

ऐसा क्यों? – कभी-कभी हम लोग पढ़कर भी समझ नहीं पाते, समझकर भी दृढ़ इच्छाशक्ति के अभाव में कुछ कर नहीं पाते, कभी-कभी सही तकनीकिपूर्ण कार्य नहीं करने से, कार्य करके भी सफल नहीं हो पाते, साधना करते हुए भी तत्त्व को जान नहीं पाते। कभी तत्त्व को जानकर भी एकांगी दृष्टिकोण के होकर कट्टर हो जाते हैं। तत्त्व जानकर भी एकांगी होने के कारण सर्वांगीणता का पूर्ण आनन्द नहीं ले पाते। ऐसा क्यों?

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान कहते हैं –

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेन

माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।।[३]

– कोई महापुरुष आश्चर्य से इस आत्मा को देखता है। कोई इस आत्मतत्त्व को आश्चर्य से वर्णन करता है। कोई आश्चर्य से सुनता है। कोई सुनकर भी इसे नहीं जानता। ऐसा क्यों होता है?

अधिकांश लोग अपने जीवन-लक्ष्य से अनभिज्ञ रहते हैं। कुछ लोग जानकर भी सचेत नहीं होते। कुछ लोग लक्ष्य-निर्धारण के बाद उसकी प्राप्ति के लिये जितना मूल्य चुकाना चाहिए, उतना नहीं कर पाते, प्रमादी हो जाते हैं। कुछ लोग लक्ष्य के अनुकूल और प्रतिकूल व्यक्ति, वस्तु और परिवेश का विचार नहीं करते और साधना के मुख्य अंग श्रवण-मनन-निदिध्यासन का अभ्यास नहीं करते। इसलिये वे जीवन-लक्ष्य, आत्मतत्त्व की धारणादि नहीं कर पाते। अत: सर्वप्रथम लक्ष्य निर्धारित करें।

जीवन का लक्ष्य क्या है? – स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – ''जीवन का प्रथम लक्ष्य है ज्ञान तथा दूसरा लक्ष्य है सुख। ज्ञान तथा सुख मुक्ति की ओर ले जाते हैं। परन्तु जब तक हर प्राणी (चींटी या कुत्ता भी) मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक कोई भी सुखी नहीं हो सकता।''

आत्मज्ञान, आत्मसुख, आत्मशान्ति से आनन्दप्राप्ति

आत्मज्ञान और आत्मसुख से व्यक्ति परम आनन्द को प्राप्त करता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।।[४]

– जो व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा में सुख प्राप्त करता है, आत्मा में ही रमण करता है तथा अन्त:स्थ परमात्मा के साथ तादात्म्य-बोध करता है, वह शान्तब्रह्म को प्राप्त करता है।

परमात्मा हैं सुख, शान्ति और आनन्द के स्रोत

सर्वप्रथम सुख और आनन्द का मूल स्रोत कहाँ है और हम उसे क्यों नहीं अनुभव कर पा रहे हैं? मनुष्य स्वयं सुख एवं आनन्दरूप है। सच्चिदानन्द है। छान्दोग्य उपनिषद की घोषणा है – **यो वै भूमा तत्सुखम्। नाल्पे सुखमस्ति। भूमैव सुखम्**[५] – भूमा में ही सुख है, अल्प में नहीं। जो अल्प है, सीमित है, चाहे उसकी सीमा आकाश सदृश ही क्यों न हो, वह अल्प ही है और उसमें सुख नहीं है। सुख तो केवल भूमा में ही है – भूमैव सुखम्।

यह भूमा क्या है? – ''जब मनुष्य अपने आत्मस्वरूप को छोड़कर दूसरा कुछ भी नहीं देखता, नहीं सुनता, नहीं जानता, वह भूमा है। सर्वत्र अपनी आत्मा को छोड़कर और कुछ नहीं देखता है।'' तभी वह शाश्वत सुख और शान्ति पाता है।

भागवत में भगवान को 'सच्चिदानन्दरूपाय' कहा गया है। गोस्वामीजी भी मानस में लिखते हैं –

जय अविनाशी सब घटवासी व्यापक परमानन्दा।
निसिबासर ध्यावहि गुनगन गावहिं जयति सच्चिदानन्दा।।

समस्त प्राणियों के हृदय में विराजमान ईश्वर ही आनन्द के स्रोत हैं, उनकी प्राप्ति से ही व्यक्ति आनन्दित रह सकता है।

ज्ञान, सुख और मुक्ति के उपाय – अब प्रश्न उठता है कि ऐसे विलक्षण ज्ञानमय, सुखमय, आनन्दमय जीवन की प्राप्ति कैसे करें? कैसे इसे अपने जीवन में अनुभव कर सदा-सदा के लिये दुख-क्लेश से मुक्त हो जायँ। कौन-सी वह विधि है, जो मानव-जीवन को समस्त संघर्षों के अतीत ले जाकर आनन्द में निमग्न कर देती है?

आनन्दप्राप्ति में बाधक तत्त्व – किन्तु विडम्बना है कि आनन्दस्वरूप नर षड् शत्रुओं के वशीभूत हो, राग-द्वेष-क्लेश से ग्रस्त हो स्वरूप की अनुभूति किये बिना ही काल कवलित हो जाता है। इसलिए किसी ने कहा है –

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगः तां तृष्णां त्यजतः सुखम्।।

– ''जो दुर्बुद्धि वालों के लिये दुस्त्यज है और शरीर के जीर्ण हो जाने पर भी जो जीर्ण नहीं होती, ऐसा प्राणान्तक रोग-तृष्णा का त्याग करने पर ही वास्तविक सुख मिलता है।''

राजा भर्तृहरि ने भी कहा है – **प्रतिकारो व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः** – तृष्णा, क्षुधा, कायादि रोग के दूर होने पर ही सुख मिलता है, विषय-भोग से नहीं।

अत: हमारे अन्त:स्थ षड् विकार जो हमारे शुद्ध आनन्द स्वरूप को आवृत्त कर रखे हैं, जिसके कारण हम जन्म-पर-जन्म लेकर, दुख भोग रहे हैं, उन विकारों को अपने अनुकूल कर्म, ज्ञान, भक्ति और राजयोग या समन्वित साधना के द्वारा विनाश कर परमानन्द की अनुभूति कर सकते हैं। ○○○

सन्दर्भ सूची – १. (वि.सा. ३/२६०, २. (वि. सा. ३/८५) ३. गीता २/२९ ४. गीता. ५/२४ ५. छान्दोग्य-७/२३/१

ज्ञान का मार्ग

स्वामी विवेकानन्द

ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म – ये चार मार्ग मुक्ति की ओर ले जाने वाले हैं । हर एक को उस मार्ग का अनुसरण करना चाहिये, जिसके लिये वह योग्य है, लेकिन इस युग में कर्मयोग पर विशेष बल देना होगा ।[१]

ज्ञानयोग – विचार का मार्ग

तुम्हें सदा स्मरण रखना होगा कि वेदान्त का मूल सिद्धान्त एकत्व या अखण्डता भाव है । द्वैत कहीं भी नहीं है; दो जगतों के लिये दो भिन्न प्रकार के जीवन नहीं हैं ।... एक ही जीवन है, एक ही जगत् है और एक ही सत्ता है । सब कुछ वही एक सत्ता मात्र है; भेद केवल मात्रा का है, प्रकार का नहीं ।... अमीबा और मैं एक ही हूँ, अन्तर केवल परिमाण का है; और सर्वोच्च जीवन की दृष्टि से देखने पर सारे भेद मिट जाते हैं ।[२]

कोई भी पूर्णता अर्जित करने की आवश्यकता नहीं है । तुम पहले से ही मुक्त और पूर्ण हो । धर्म, ईश्वर या परलोक विषयक ये सब धारणाएँ कहाँ से आयीं? मनुष्य क्यों 'ईश्वर-ईश्वर' करता घूमता फिरता है? सभी देशों में, सभी समाजों में मनुष्य क्यों पूर्ण आदर्श का अन्वेषण करता फिरता है – चाहे वह आदर्श मनुष्य में हो, अथवा ईश्वर या किसी अन्य वस्तु के रूप में? इसलिये कि वह भाव तुम्हारे ही भीतर वर्तमान है । वह थी तुम्हारे हृदय की धड़कन और तुम उसे नहीं जानते थे; तुम सोचते थे कि बाहर की कोई वस्तु यह ध्वनि कर रही है । तुम्हारी आत्मा में विराजमान ईश्वर ही तुम्हें अपनी खोज करने को – अपनी उपलब्धि करने को प्रेरित कर रहा है । यहाँ, वहाँ, मन्दिर में, गिरजाघर में, स्वर्ग में, मर्त्य में, विभिन्न स्थानों में, अनेक उपायों से खोज करने के बाद, अन्त में हम एक चक्कर पूरा करके, हमने जहाँ से आरम्भ किया था, वहीं अर्थात् अपनी आत्मा में ही वापस आ जाते हैं और देखते हैं कि जिसको हम सारे जगत् में खोजते फिर रहे थे, जिसके लिये हमने मन्दिरों और गिरजाघरों में जा-जाकर कातर होकर प्रार्थनाएँ कीं, आँसू बहाये, जिसको हम सुदूर आकाश में मेघ -राशि के पीछे छिपा हुआ अव्यक्त और रहस्यमय समझते रहे, वह हमारे निकट से भी निकट है, प्राणों का भी प्राण है, हमारा शरीर है, हमारी आत्मा है – तुम्ही 'मैं' हो, मैं ही 'तुम' हूँ । यही तुम्हारा स्वरूप है – इसी को अभिव्यक्त करो । तुम्हें पवित्र होना नहीं पड़ेगा – तुम स्वयं पवित्र ही तो हो । तुम्हें पूर्ण होना नहीं पड़ेगा – तुम पूर्ण ही तो हो । सारी प्रकृति देश-कालातीत सत्य को परदे के समान ढँके हुए है । तुम जो कुछ भी अच्छा विचार या अच्छा कार्य करते हो, उससे मानो वह आवरण धीरे-धीरे छिन्न होता रहता है और वह देश-कालातीत शुद्ध स्वरूप, अनन्त ईश्वर स्वयं अभिव्यक्त होता रहता है ।[३]

वेदान्त का समाधान यह है कि हम बद्ध नहीं, वरन् नित्य मुक्त हैं । यही नहीं, बल्कि अपने को बद्ध सोचना भी अनिष्टकारक है, वह भ्रम है – आत्म-सम्मोहन है । ज्योंही तुमने कहा कि मैं बद्ध हूँ, दुर्बल हूँ, असहाय हूँ, त्योंही तुम्हारा दुर्भाग्य आरम्भ हो गया, तुमने अपने पैरों में एक बेड़ी और डाल ली । अत: ऐसी बात कभी न कहना और न कभी ऐसा सोचना ही ।[४]

वेदान्त कहता है कि दुर्बलता ही दुनिया के सारे दु:खों का कारण है, इसी से सारे दु:ख-कष्ट पैदा होते हैं । हम दुर्बल हैं, इसीलिये इतना दु:ख भोगते हैं । हम दुर्बलता के कारण ही चोरी-डकैती, झूठ-ठगी तथा इसी प्रकार के अनेकानेक दुष्कर्म करते हैं । दुर्बल होने के कारण ही हम मृत्यु के मुख में गिरते हैं । जहाँ हमें दुर्बल बनाने वाला कोई नहीं है, वहाँ न मृत्यु है न दु:ख । हम लोग केवल भ्रान्तिवश ही दु:ख भोगते हैं । इस भ्रान्ति को दूर कर दो और तत्काल सारे दु:ख चले जायेंगे ।[५] ○○○

१. विवेकानन्द साहित्य, (सं. १९८९) खण्ड १०, पृ. २१८; २. वही, खण्ड ८, पृ. ८-९; ३. वही, खण्ड २, पृ. १४; ४. वही, खण्ड १०, पृ. ३६७; ५. वही, खण्ड २, पृ. १८६
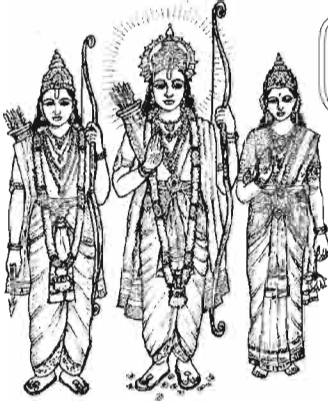
धर्म-जीवन का रहस्य (९/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

भगवान बोले – "भाई, कुछ तो मर्यादा की बात सोचो। कुछ नहीं तो कमर में ही एक छोटा-सा वस्त्र लपेट लो। इतना तो विवेक तुममें होना ही चाहिए।" बात उसको जँच गई। उसने थोड़ा-सा वस्त्र लपेट लिया। उधर पाण्डवों ने जब गांधारी की यह प्रतिज्ञा की बात सुनी थी, तो तहलका मच गया था। पतिव्रता गांधारी तो दुर्योधन को वज्र के समान सबल बना देगी। परन्तु जब दुर्योधन कटि पर वस्त्र लपेटे माँ के सामने गया और माँ ने दृष्टि खोली, तो सारा शरीर तो वज्र का हो गया, लेकिन कमर के जितने भाग में वस्त्र लिपटा हुआ था, उतना भाग वज्र का नहीं हुआ।

बड़ा आश्चर्य होता है। गांधारी की जिन आँखों में इतना चमत्कार था कि शरीर को वज्र का बना दे, उनमें क्या एक पतले-से कपड़े को पार करने की शक्ति नहीं थी? यह तो न समझ में आनेवाली बात है। ऐसी अलौकिक शक्तिवाली वह पतिव्रता उस कपड़े के आड़ के हिस्से को वज्र का नहीं कर सकी। इसमें संकेत यह है कि वह झीना वस्त्र, वही ईश्वर की इच्छा है, ईश्वर का संकल्प है। कोई चाहे पतिव्रता हो, धर्मात्मा हो, परन्तु वह ईश्वर की इच्छा के आगे बढ़कर कुछ भी नहीं कर सकता, भले ही वह अपनी सारी शक्ति लगा दे।

ईश्वर की इच्छा का वह वस्त्र तो बड़ा झीना-सा है, क्योंकि वह कभी सामने नहीं आता, परन्तु जब उसका यही संकल्प है, तब कोई क्या कर लेगा! भगवान कृष्ण ने हँसते हुए पाण्डवों से कहा – यह तो गांधारी का अविवेक और दुर्योधन का दुर्भाग्य है! गांधारी दुर्योधन को अमर बनाने चली थी, लेकिन दुर्भाग्य ऐसा है कि गांधारी ने उसको अमर तो बनाया ही नहीं, बल्कि उल्टे उसने संसार के सामने उसकी मृत्यु का उपाय प्रगट कर दिया। – कैसे? – वैसे तो लड़ते समय ही यह पता चलता कि दुर्योधन कहाँ मारने से मरेगा, परन्तु अब तो पहले से ही पता चल गया कि उसको कमर पर मारने से मर जायेगा। इस प्रकार गांधारी ने पाण्डवों के लिये बड़ा अच्छा उपाय निकाल दिया, भीम का रास्ता सुगम कर दिया। इसका अर्थ है कि यदि आपका 'धर्म' अधर्म को अमर बनाना चाहता है, तो वह 'धर्म' कैसे होगा? यह तो असम्भव है। वस्तुत: गांधारी ही अपने पुत्र के मृत्यु का मुख्य कारण बनी। दुर्योधन की मृत्यु का रहस्य ज्ञात हो गया और उसी का प्रयोग किया गया।

जो समस्या दुर्योधन के साथ थी, वही रावण के साथ भी है। शंकरजी ने पार्वतीजी से कहा – वैसे तो पता नहीं यह कब किसके हाथ से मरता, परन्तु इसने बानर और मनुष्य की सीमा बनाकर बता दिया कि मैं मरूँगा तो इन्हीं के हाथों मरूँगा। – महाराज, उसने ऐसी भूल क्यों की? भगवान शंकर बोले – वह सोचता था कि ये तो मेरे भोजन हैं और भोजन से तो स्वास्थ्य की उन्नति होती है। वह भूल गया कि अधिकांश लोग भोजन से ही अस्वस्थ होते और मरते भी हैं। तो उसका भोजन ही उसे खा जायेगा। यह एक बहुत बड़ा गणित है। व्यक्ति भोजन को खाता है या भोजन व्यक्ति को खाता है? रावण का यही बहुत बड़ा दुर्भाग्य है। तो धर्म का अर्थ क्या हम यही लेंगे कि हम सफल हो जायँ, दूसरों को कष्ट दें, दूसरों को सजा दें, दूसरों को मिटा दें? और तब उसको देखकर आप धर्म का प्रमाण दे दीजिए। परन्तु यह धर्म नहीं है, वह तो धर्म का कवच मात्र है।

वस्तुत: धर्म का एक पक्ष दशरथ के जीवन में है और दूसरा पक्ष रावण के जीवन में। दस तो उधर भी है और दस ही इधर भी है। दस सिरवाला (रावण) अभिमानी था। उसको अपने में कोई कमी दिखाई नहीं देती थी। और दशरथजी में? लोगों को लगता था कि दशरथ के पास सब कुछ है। परन्तु दशरथजी को ऐसा लगा कि मुझमें अभाव है, मेरे कोई पुत्र नहीं है –

अवधपुरी रघुकुल मनिराऊ।
बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ।। १/१८८/७

मैं गलानि मोरें सुत नाहीं । १/१८९/१

यह साधना का एक क्रम है । दशरथ के मन में पुत्र की इच्छा उत्पन्न हुई । उधर रावण के पुत्रों की तो इतनी बड़ी संख्या है कि उसकी गणना ही नहीं की जा सकती –

सुत समूह जन परिजन नाती ।
गनै को पार निसाचर जाती ।। १/१८१/३

दशरथ के पास पुत्र नहीं है । धर्म का श्रीगणेश कहाँ से हुआ? – अभाव की अनुभूति से । – अभाव भी किसका? – पुत्र का । अभाव तो संसार में न जाने कितने लोगों के जीवन में आज भी होता है । और पुत्र पाने के लिए लोग निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं । तो मानो धर्म की पहली कक्षा यह है कि यदि हमारे जीवन में कामना उत्पन्न हो, तो बड़ी अच्छी बात है। क्योंकि धर्म का श्रीगणेश तो कामना से ही होता है और कुछ कामनाएँ तो व्यक्ति के जीवन में सहज भाव से होती हैं – जैसे पुत्र की कामना, धन की कामना, कीर्ति की कामना । इन्हीं को त्रिविध एषणाएँ कहा गया है । इन्हीं के द्वारा व्यक्ति आगे बढ़ने की चेष्टा करता है ।

परन्तु इसमें धर्म की क्या भूमिका है? महाराज दशरथ जब उस अभाव की अनुभूति करते हैं, तो वे गुरु वशिष्ठ के पास जाते हैं । एक महान सूत्र यह है कि अभाव की पूर्ति के लिए हम कहाँ जाते हैं? किसका आश्रय लेते हैं? महाराज दशरथ ने सन्त का, गुरु का आश्रय लिया ।

यदि हमारे जीवन में अभाव की अनुभूति हो रही है, कामना है, तो चिन्ता की कोई बात नहीं, क्योंकि प्रारम्भ में ही कोई व्यक्ति कामना से मुक्त नहीं हो जाता । उस कामना की पूर्ति के लिए हमें सन्त या गुरु के पास जाना चाहिये । रामायण में लिखा है – बुद्धि, कीर्ति, गति, सम्पत्ति और भलाई, ये पाँच चीजें यदि संसार में किसी को मिली हुई हैं, तो उसके पीछे सन्त का प्रभाव ही हो सकता है –

मति कीरति गति भूति भलाई ।
जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई ।।
सो जानब सतसंग प्रभाऊ ।। १/३/५-६

सचमुच ही यह पंक्ति सही है क्या? संसार में न जाने कितने ही ऐसे व्यक्ति हैं, जो सन्तों का विरोध करते हैं, निन्दा करते हैं, फिर भी बड़े बुद्धिमान हैं । अनेक ऐसे व्यक्ति हैं, जो सन्तों के पास भी नहीं फटकते, परन्तु उनका बड़ा नाम है । अनेक व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्हें सन्त से कुछ लेना-देना नहीं है, उनके पास बड़ी सम्पत्ति है । परन्तु इस सूत्र का अर्थ यह है कि किस वस्तु को कैसे पाना चाहिए और उस पाने का अर्थ क्या है, यह तो सन्त ही बता सकता है ।

पाने का सच्चा अर्थ क्या है? आप बाजार में कोई वस्तु खरीदने जायँ, तो आप वहाँ देखते हैं कि झल्ली लिए हुए कई आदमी खड़े रहते हैं और वे कहते हैं, क्या हम आपके साथ चलें? आप जो कुछ खरीदते हैं, वह सब उसके सिर पर रखी झल्ली में डालते जाते हैं । सारा सामान उसके सिर पर है और आप खाली जा रहे हैं । परन्तु वह सामान उसका है या आपका? तात्पर्य यह कि वह तो बेचारा मात्र ढोने वाला है । अन्त में, उसको तो बदले में आप थोड़े-से पैसे देंगे, स्वामी तो आप स्वयं हैं । यहाँ व्यंग्य यह है कि आप सम्पत्ति, कीर्ति, बड़ाई के मजदूर हैं या सचमुच उसके स्वामी हैं । संसार में सभी ढोने वाले मजदूर ही तो हैं । हम सम्पत्ति को ढो रहे हैं, सुख को ढोने की चेष्टा कर रहे हैं ।

व्यासजी ने कहा – मनुष्य की स्थिति तो यह है कि जैसे दिन भर कोई पलंग ढोवे और रात को बिछाकर सोवे । तुलसीदासजी से नहीं रहा गया । वे बोले – महाराज, आपने तो बात बड़ी अच्छी कही । इसमें व्यक्ति को यह सन्तोष तो हो ही सकता है कि चलो, यदि मैंने इतने घण्टे ढोया, तो अन्त में कुछ घण्टे सो भी तो लिया । पर मुझे तो लगता है कि संसार वाले दिन भर ढोते हैं और रात होती है, तो बिछाना शुरू करते हैं । रात भर बिछाते रहते हैं और सुबह होते ही पलंग को फिर से सिर पर लाद कर चल पड़ते हैं ।

डासत ही गइ बीत निसा सब,
कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो ।।(विनय. २४५/४)

इसका अर्थ है कि वृद्धावस्था तक योजना बन रही है कि यह वस्तु और आ जाय, ऐसा हो जाय, तो बड़ा आनन्द आ जायेगा । ऐसी ही सब तैयारी चलती रहती है – दिन भर बोझ उठाकर ढोइए और तभी मृत्यु का निमंत्रण आ जाता है । कहा गया कि सन्त के द्वारा कीर्ति मिलती है, तो इसका क्या अर्थ है? कीर्ति को ढोना तो सब जानते हैं, परन्तु कीर्ति का स्वामी, सम्पत्ति का स्वामी, सुख का स्वामी कैसे बनना, इसका मंत्र तो सन्त ही जानता है, वही युक्ति बताता है कि इन वस्तुओं को हमें ढोना नहीं है, हम इनके गुलाम नहीं है, इनके मजदूर नहीं है, हमें तो वस्तुत: इनका स्वामी बनना है ।

इसीलिए महाराज दशरथ गुरु वशिष्ठ के पास जाते हैं । सन्त ने सचमुच वही किया । पुत्र के लिए व्यक्ति बड़ा व्यग्र रहता है । असंख्य दृष्टान्त हैं । परन्तु अधिकांश दृष्टान्त हैं कि पुत्र बहुत दुख देने लगता है, क्योंकि वह चौबीसों घण्टे

साथ में रहता है । बड़ा पश्चाताप होने लगता है । क्या यह आवश्यक है कि पुत्र पाने के बाद व्यक्ति पूरी तरह से सुखी हो जाय? शास्त्रों ने कहा – एक नरक है, जिसका नाम पुम् है, जो इस पुम् नाम के नरक से बचावे, वह पुत्र है । पुत्र के द्वारा श्राद्ध करने और तिलांजलि देने से उसके पिता को उस नरक में नहीं जाना पड़ता । ठीक है, परन्तु इस लोक में क्या होता है?

एक व्यक्ति अपने पिता के लिए श्राद्ध करने जा रहे थे । वे पिता की अस्थि लेकर प्रयाग में त्रिवेणी में विसर्जन करने जा रहे थे । किसी ने कबीरदास से कहा – देखिए, यह पुत्र पिता के लिए कितना श्रद्धापूर्ण कार्य कर रहा है? कबीरदास उसके पूरे चरित्र से परिचित थे, बोले – तुम ठीक कहते हो, परन्तु जब तक इनके पिता जीवित रहे, तब तक ये उनसे लड़ते ही रहे –

जियत बाप सो दंगम दंगा ।
मरे हाड़ पहुँचावे गंगा ।।

पुत्र एक नरक से तो बचायेगा, पर इस जीवन को ही नरक बना देगा । रोज नरक भोगिए, रोज कष्ट भोगिए । लेकिन यह बात यदि महाराज दशरथ से कह दिया जाय, तो उनको बुरा लगेगा । परन्तु सन्त की विशेषता क्या है? जब महाराज दशरथ पुत्र की इच्छा से गये, तो उन्होंने यह नहीं कहा कि पुत्र से क्या होता है, छोड़ो पुत्र की इच्छा !

उन्होंने कहा – ठीक है, घबराओ मत, पुत्र मिलेगा, लेकिन तुम्हें एक यज्ञ करना होगा । उस यज्ञ का आचार्य मैं नहीं, शृंगी ऋषि होंगे । इस यज्ञ के द्वारा तुम्हें केवल एक नहीं, चार पुत्र मिलेंगे । कैसा बढ़िया मोड़ दिया – अरे, तुम तो एक के लिए बेचैन हो रहे हो, तुम्हें तो एक की जगह चार मिलने वाले हैं । मिलेंगे, परन्तु यज्ञ करो ।

कई लोग पूछते हैं – क्या यज्ञ करने से ही पुत्र मिलता है? इस संसार में जिनके बहुत-से पुत्र हैं, क्या वे सब यज्ञ करके ही पुत्र पा रहे हैं? – पुत्र तो आप चाहे जैसे पा सकते हैं, परन्तु कामना को यज्ञ से जोड़ देना, यही गुरु का चमत्कार है । धर्म के सन्दर्भ में गुरु व्यक्ति को मानो एक कक्षा से दूसरी कक्षा में उठाता है । गुरु वशिष्ठ ने कहा – ठीक है, तुम्हारी कामना पूर्ण होगी, पर इसके लिए तुम्हें देवताओं की आराधना करनी होगी, यज्ञ में आहुति देनी होगी, ऋत का वरण करना होगा । यही धर्म की कक्षा है । यह अनुभूति करा देना कि कामना की पूर्ति के लिए हम किस मार्ग का आश्रय लें । यही संकेत आपको गीता में भी मिलेगा, जहाँ भगवान प्रारम्भ में यज्ञ-कर्म के लिए कहते हैं । वे कहते हैं कि तुम देवताओं की पूजा करो और वे तुम्हारी कामना पूरी करेंगे । वह ठीक है । उस क्रम से कितना अच्छा हुआ? पुत्र हुए । परन्तु गुरु ने यह कैसी अनोखी बात कह दी !

मिठाई और दवाई में बड़ा अन्तर होता है । मिठाई मीठी होती है और दवाई कड़वी भी हो सकती है । गुरु ने ऐसा चमत्कार किया कि मिठाई और दवाई – दोनों एक ही हो गये । संसार की दृष्टि में ईश्वर की प्राप्ति तो दवाई है और संसार की प्राप्ति मिठाई है, पुत्र की प्राप्ति मिठाई है । परन्तु गुरु ने ऐसा चमत्कार किया, बोले – ईश्वर ही पुत्र बनकर मिलेगा । वह ईश्वर जीवन में पुत्र के रूप में अवतरित होगा । संकेत यह है कि हमारी कामना का फल यह होना चाहिए कि ईश्वर हमारे जीवन में आ रहा है या नहीं, हम ईश्वर से दूर हो रहे हैं या पास हो रहे हैं? **(क्रमशः)**

हमारे युवकों को बलवान बनना होगा। धर्म पीछे आयेगा। हे मेरे युवक बन्धुओ ! तुम बलवान बनो – यही तुम्हारे लिये मेरा उपदेश है। गीता पाठ करने की अपेक्षा तुम्हें फुटबाल खेलने से स्वर्ग-सुख अधिक सुलभ होगा।

बलवान शरीर से अथवा मजबूत पुट्ठों से तुम गीता को अधिक समझ सकोगे। शरीर में ताजा रक्त होने से तुम कृष्ण की महती प्रतिभा और महान् तेजस्विता को भली-भाँति समझ सकोगे। जिस समय तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों के बल दृढ़तापूर्वक खड़ा होगा, जब तुम अपने को मनुष्य समझोगे, तभी तुम उपनिषद् और आत्मा की महिमा ठीक-ठीक समझोगे। मैं जो चाहता हूँ वह है लोहे की नसें और फौलाद के स्नायु, जिनके भीतर ऐसा मन निवास करता हो, जो कि वज्र के समान बना हो, जिसमें बल, पुरुषार्थ, क्षात्रवीर्य और ब्रह्मतेज हो ।

– स्वामी विवेकानन्द

सारगाछी की स्मृतियाँ (४४)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

स्वामी प्रेमेशानन्द

११-०९-१९६०

प्रश्न – सत्य-मार्ग पर चलने से यदि दुख मिले तो?

महाराज – इसीलिए तो संन्यास है। उच्च आदर्श के लिए ही तो आए हो। यदि तुम सत्य-मार्ग पर रहो, तो कोई भी तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं पायेगा। अन्त में तुम निश्चित ही जीतोगे। अभी जो तुम्हें जूता मार रहा है, वही सम्भवत: बाद में तुम्हारी पूजा करेगा और पाँच वर्ष बाद तुम्हारी चरण-धूलि सिर पर लगाएगा। ये सब मैंने स्वयं देखा है।

संघ के साधु-ब्रह्मचारीवृन्द यहाँ आते हैं, क्या वे नहीं आयेंगे? यह तो एक प्रकार का भ्रातृत्व है। सबका ही तो एक लक्ष्य है। देखो, कहाँ-कहाँ से सब लोग आते हैं – सारदापीठ, नरेन्द्रपुर, कहाँ मद्रास, मध्यप्रदेश और मुम्बई से सब लोग आते हैं। कहाँ का एक बूढ़ा, कोई पद नहीं, कुछ पाने को नहीं, कोई क्षमता नहीं, किन्तु क्यों आते हैं? संघ का प्रेम ही तो प्राण है। ऐसा हुआ, एक व्यक्ति आया, किसी के पास कोई सहानुभूति नहीं मिली, नवागन्तुक की ओर देखने के लिए किसी के पास समय नहीं है। मैं सचमुच मनुष्य से प्रेम करता हूँ, इसमें रंचमात्र भी छल-कपट नहीं है। यही तो परीक्षा है – कोई ईश्वर की ओर बढ़ रहा है कि नहीं, मनुष्य को, सभी जीवों को प्रेम करता है कि नहीं 'सर्वभूतस्थमात्मानम् '। हमलोगों की पत्नी नहीं, पुत्र नहीं, जगह-जमीन नहीं, है तो बस थोड़ा प्रेम। इसलिये जो भी आए, उसे देने के लिये हमारे पास बस थोड़ा-सा प्रेम है। ठाकुर को तो स्वामीजी ने बस प्रेम (L-O-V-E) ही बताया है।

महाराज लोगों के पास भी हमलोग गए हैं, देखा है वही प्रेम। कैसी मधुर वाणी ! प्रेम करके ही तो बाँधा जा सकता है। सुसंस्कृत नहीं होने पर सम्बन्ध स्थायी नहीं होता। हँसी-मजाक करके सम्बन्ध तो बनता है, किन्तु केवल दो दिन के लिए।

प्रश्न – आश्रम में यदि विपरीत परिवेश हो, तो क्या करना उचित है?

महाराज – आश्रम का परिवेश खराब होने पर भी इसे छोड़कर चले जाना उचित नहीं होगा। दिन-रात ठाकुर से प्रार्थना करो और सुअवसर खोजते रहो, सुअवसर मिलते ही जल्दी-से चले जाओ। तुम जहाँ गये हो, यदि वह स्थान भी खराब हो, तो पुन: वहाँ से भाग जाने का सुअवसर ढूँढ़ो।

सावधान, कभी भी मारपीट या झगड़ा मत करना उससे मानसिक क्षति होती है, जिसके हाथ से कुछ मिलना हो, उससे हठ नहीं करना। ठाकुर की बात तो जानते हो न?

प्रश्न – मेरे भीतर जो अनन्त ज्ञान और अनन्त शक्ति है, वही तो अवतार हुए हैं, क्या वे ही रामकृष्ण, सारदा हैं?

महाराज – हाँ, वही निर्गुण ब्रह्म माया द्वारा सगुण हो गए हैं। किन्तु तुम जो अनन्त शक्ति हो, क्या उसे तुम देखते हो? नहीं देख रहे हो तो? तुम देख रहे हो कि तुम मनुष्य हो, वैसे ही अवतार हैं। फिर जब तुम्हें तत्त्वज्ञान होगा, तब देखोगे कि तुमने कभी जन्म ही नहीं लिया। वैसे ही अवतार-टवतार मिथ्या हैं। परन्तु जब तक तुम इस शरीर में हो, तब तक प्रार्थना करने से वे सुनते हैं और सहायता करते हैं।

वास्तविक बात है, जब प्रार्थना करते हैं, तब मानसिक शक्ति में वृद्धि होती है। वह व्यक्ति अनुभव करता है कि उसके पीछे कोई एक है, उससे ही उसकी पुरुषार्थ शक्ति बढ़ जाती है। मान लो दो छात्र हैं। दोनों में समान बुद्धि है, दोनों समान परिश्रम करते हैं और दोनों को समान सुयोग और सुविधाएँ हैं। परीक्षा के पहले एक छात्र ने

ईश्वर-चिन्तन किया, वही अच्छा परिणाम पायेगा। हनुमान सिंह (श्रीरामकृष्णवचनामृत में इनका वर्णन है) की विजय इसी प्रकार हुई थी। किन्तु एक अन्य छात्र ने वर्ष भर पढ़ाई ही नहीं की, किन्तु परीक्षा के पहले वह केवल ईश्वर को ही पुकारने लगा, उससे कुछ नहीं होगा। तुममें जितनी भी शक्ति है, उस पूर्ण शक्ति का सदुपयोग नहीं करने से प्रार्थना फलदायी नहीं होती।

प्रश्न – कई बार ऐसा होता है कि मन में एक ही बात को लेकर दो विचार उठते हैं – कौन-सा अच्छा है, कौन-सा खराब है, समझ नहीं पाता हूँ। तब सम्भवत: खराब विचार को ही युक्तिसंगत समझकर उस ओर झुक सकता हूँ, तब क्या करूँ?

महाराज – मन की वैसी अवस्था होने पर ईश्वर का नाम-जप करना चाहिए, उनसे प्रार्थना करनी चाहिए, कहना चाहिए – जो अच्छा हो, वही कर दो। इससे मन शुद्ध वस्तु का चिन्तन करके प्रशान्त और शुद्ध हो जाता है, तब जो बिल्कुल न्यायसंगत होता है, उसे ही करने की मन में इच्छा होगी।

संन्यासी बात-बात में लिखते हैं – ठाकुर, माँ की कृपा ! गृहस्थ लिख सकता है और संघ के अध्यक्ष महाराज लोग लिखते हैं। वे लोग जो लिखते हैं, उसका कारण है कि उन्हें दस हजार शिष्यों को सिखाना होता है। फिर भी किसी स्थान-विशेष में ही (ऐसा) लिखा जाता है। जैसे अचानक संयगोवश किसी से कुछ अच्छा काम हो गया, तो वहाँ ईश्वर की कृपा कह सकता है। किन्तु हर बात में, उठते-बैठते ईश्वर की कृपा, यह कैसी बात है !

प्रश्न – ठाकुर, माँ और स्वामीजी के बीच किस तरह का सम्बन्ध है?

महाराज – कायव्यूह का नाम सुना है? योगी अपने प्रारब्ध कर्म को क्षय करने के लिये एक ही साथ बहुत से शरीर धारण करते हैं, जैसे एक शरीर में योगी, दूसरे शरीर में राजा और एक अन्य देह में जप करते हैं। ठाकुर, माँ और स्वामीजी भी एक वस्तु के तीन शरीर हैं। तीन शरीर में तीन प्रकार से कार्य कर रहे हैं। सारदानन्दजी से माँ कहती हैं, "ठाकुर और मैं क्या अलग हैं?" स्वामीजी के शिष्य द्वारा पूजा करने पर बाबूराम महाराज कहते हैं, "तुम और ठाकुर क्या अलग-अलग हो?" माँ देखती हैं, स्वामीजी के भीतर ठाकुर प्रवेश कर रहे हैं, यह है आइडिया ऑफ ट्रिनिटी – त्रिदेव की धारणा।

प्रश्न – स्वामीजी पवहारी बाबा के पास क्यों गए?

महाराज – स्वामीजी निर्विकल्प समाधि में रहना चाहते थे। किन्तु ठाकुर उन्हें (उससे नीचे की भूमि पर) उतार कर रखते हैं। पवहारी बाबा तेरह दिन तक समाधिस्थ रहते थे। स्वामीजी उसी लोभ में गए। इक्कीस दिनों तक उन्हें ठाकुर का दर्शन हुआ। बाद में स्वामीजी समझ गए कि ठाकुर ही श्रेष्ठ योगी हैं। अन्त में स्वामीजी ने देखा, पवहारी बाबा ही उनसे कुछ लेना चाहते हैं।

प्रश्न – तैलंग स्वामी ढाई सौ वर्षो तक कैसे जीवित रहे?

महाराज – प्रारब्ध क्षय होते ही शरीर चला गया। देखो, एक बात कहूँगा-कहूँगा सोच रहा हूँ। जब मेरी सेवा करो, तो मन-ही-मन इष्ट-मंत्र का जप करना। मैं माँ से कहता हूँ, माँ ! जो मेरी सेवा कर रहे हैं, वे जिस किसी परिस्थिति में ही रहें, उन्हें तुम देखो।

सकाम भाव से मेरी सेवा करना, तो माँ से कहना – माँ! तुम्हारे पुत्र की सेवा करता हूँ, तुम मुझे ज्ञान-भक्ति दो। मुझे माँ की सन्तान समझकर सजगता से सेवा करने पर माँ की बात याद आएगी, इससे तुम लोगों का मंगल होगा। माँ की सन्तान समझकर मेरी सेवा करने से ही तो तुम लोगों का कल्याण होगा। ऐसा नहीं करने से मुझमें और एक कुत्ते में क्या अन्तर है? **(क्रमशः)**

संसार ही दुख का कारण है

एक जगह धीवर मछली मार रहे थे, एक चील झपटकर एक मछली ले गई, परन्तु मछली को देखकर करीब एक हजार कौए उसके पीछे लग गए, और साथ ही काँव-काँव करके बड़ा हल्ला मचाना शुरू कर दिया। मछली को लेकर चील जिस तरफ जाती, कौए भी उसके पीछे-पीछे उसी तरफ जाते। चील दक्षिण की ओर गई, तब वे भी उसी ओर गए। इसी तरह पूर्व और पश्चिम की ओर भी चील चक्कर काटने लगी। अन्त में, घबराहट के मारे उसके चक्कर लगाते हुए मछली उससे छूटकर जमीन पर गिर पड़ी। तब वे कौए चील को छोड़ मछली की ओर उड़े। चील तब निश्चिन्त होकर एक पेड़ की डाल पर जा बैठी। बैठी हुई सोचने लगी, 'कुल बखेड़े की जड़ यही मछली थी; अब वह मेरे पास नहीं है, इसलिए मैं निश्चिन्त हूँ।'

– श्रीरामकृष्ण देव

स्वामी ब्रह्मानन्द के संस्मरण

स्वामी वीरेश्वरानन्द

(श्रीरामकृष्ण के एक प्रधान शिष्य स्वामी ब्रह्मानन्द रामकृष्ण मठ-मिशन के प्रथम संघाध्यक्ष थे। १० फरवरी, १९७८ ई. को उनकी जन्मतिथि पर ये संस्मरण रामकृष्ण मिशन, मुम्बई में दशम संघाध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज ने सुनाये थे। इसका अनुलेखन अंग्रेजी मासिक 'वेदान्त-केसरी' के फरवरी, १९८४ के अंक में प्रकाशित हुआ था, वहीं से स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने उसका विवेक-ज्योति के लिए हिन्दी अनुवाद किया है। – सं.)

(गतांक का शेष भाग)

किसी-किसी व्यक्ति से उन्हें अरुचि – मानो एलर्जी हो जाती थी । वे जब मद्रास में थे, तो इसी तरह का एक व्यक्ति उनसे मिलने को बड़ा व्यग्र था और महाराज उससे परहेज कर रहे थे । उस व्यक्ति का एक मित्र हमारे मिशन का भक्त और उसके सचिव रामस्वामी अयंगार का घनिष्ठ मित्र था । जब कभी वह रामस्वामी के साथ आता, तो महाराज उससे मिलते, पर एक दिन जब रामस्वामी अयंगार ने बताया कि उनका वह मित्र आया है, तो महाराज बोले, ''आज मेरी तबीयत थोड़ी खराब है । उसे किसी अन्य दिन आने को कहो ।'' अत: रामस्वामी अयंगार ने जाकर उसे वही बात कह दी । उस व्यक्ति के चले जाने के तुरन्त बाद एक अन्य गाड़ी मठ में आकर रुकी और आश्चर्य की बात कि उसमें वही व्यक्ति सवार था, जिससे राजा महाराज को परहेज था । उसने आते ही अपने मित्र के बारे में पूछा, ''क्या मि. अमुक यहाँ है?'' रामस्वामी अयंगार ने उत्तर दिया, ''वे आये तो थे, पर अभी-अभी चले गये ।'' वह व्यक्ति निराश होकर लौटा । सम्भवत: दोनों ने मिलकर योजना बनाई थी कि दोनों साथ ही मठ में पहुँचेंगे और राजा महाराज के साथ मिला हुआ वह भक्त अपने इस मित्र को भी उनके पास ले जायेगा; इस प्रकार महाराज उसे टाल न सकेंगे । परन्तु लगता है, महाराज को पहले पूर्वाभास मिल चुका था, अत: उन्होंने उस भक्त को मिलने से मना कर दिया, पहले उन्होंने उसे कभी मना नहीं किया था । इस प्रकार महाराज ने उनकी योजना पर पानी फेर दिया । उस दिन को छोड़ बाकी सभी दिन भक्त आकर उनसे घनिष्ठतापूर्वक घुला-मिला करता था ।

एक अन्य समय महाराज इलाहाबाद के मठ में निवास कर रहे थे । उन्होंने दूर से एक व्यक्ति को आश्रम की ओर आते हुए देखा, जिसे वे नापसन्द करते थे । अत: वे भीतर जाकर बिस्तर पर लेट गये और सेवक से बोले, ''मैं बुखार से काँप रहा हूँ, मुझे कम्बल ओढ़ा दो और दबाकर रखो ।'' सेवक के कम्बल से ढँक देने पर भी वे काँप रहे थे । उनका पूरा शरीर ऐसा काँप रहा था, मानो उन्हें मलेरिया बुखार हुआ हो । सेवक ने बाहर आकर महाराज से मिलने आये हुए उस व्यक्ति से कहा, ''आज आप उनसे नहीं मिल सकेंगे, वे बीमार हैं ।'' अत: वह व्यक्ति उलटे पाँव लौट गया । इसके बाद महाराज ने पूछा, ''क्या वह भक्त चला गया?'' जैसे ही उन्हें बताया गया कि भक्त जा चुका है, उनका बुखार उतर गया, वे उठ बैठे और हुक्का लाने का आदेश दिया । यह अपने आप में एक रहस्य ही है कि कैसे वे सहसा बीमार पड़ गये, उन्हें बुखार चढ़ आया, दो कम्बलों से ढँकने के बावजूद उनका शरीर काँपता रहा और कैसे वे पुन: स्वस्थ हो उठे । पर यह भी सत्य है कि महाराज उसके आगमन मात्र से अस्वस्थ हो उठे थे और उसके जाते ही स्वस्थ हो गये ।

जब वे वाराणसी में थे, तो वहाँ बाहर के एक मठ में एक भण्डारा हुआ । वहाँ के एक स्वामीजी उस समष्टि[४] भण्डारे के निमंत्रण को नगर के सभी मठों में वितरित करते हुए हमारे 'रामकृष्ण अद्वैत आश्रम' में भी आये और स्थानीय आश्रमाध्यक्ष से पूछा, ''आपके यहाँ कितने टिकट लगेंगे ।'' सामान्यतया वहाँ सात-आठ टिकटों की जरूरत हुआ करती थी, परन्तु उस समय राजा महाराज की उपस्थिति के कारण वहाँ अनेक साधु आये हुए थे । अत: अध्यक्ष के पचास टिकट माँगने पर वे स्वामीजी विस्मय में आकर पूछ बैठे, ''आपके यहाँ इतने साधु हैं ।'' अध्यक्ष महाराज ने उत्तर दिया – निश्चय ही ।'' वे स्वामीजी पचास टिकट देकर चले गये ।

नियत दिन स्थानीय आश्रामध्यक्ष ने सभी साधुओं को भण्डारे में जाने को कहा, पर उनमें से अधिकांश लोग राजी नहीं हुए । महाराज की उपस्थिति के कारण वे सभी भण्डारे में न जाकर, उन्हीं के सान्निध्य में समय बिताना चाहते थे । इस पर अध्यक्ष स्वामीजी बड़ी मुश्किल में पड़े और उन्होंने जाकर महाराज से कहा, ''यहाँ पर इतने साधु हैं, इस कारण मैंने पचास टिकट लिये थे । पर सभी जाने से इन्कार कर रहे हैं, और मैं किसी को भी भेजने में सफल नहीं हो सका । अत: मैं बड़ी समस्या में पड़ गया

हूँ ।'' महाराज बोले, ''ठीक है, तुम घण्टी बजाओ ।'' महाराज जब कभी दोनों आश्रम के साधुओं को एकत्र करना चाहते, तो घण्टी बजा दी जाती थी । अत: घण्टी बजने पर सभी लोग आकर महाराज के कमरे के नीचे के बरामदे में समवेत हुए । वहाँ खड़े महाराज ने कहा, ''सभी लाइन में खड़े होकर पंक्ति बना लो ।'' सबके पंक्तिबद्ध हो जाने पर वे पुन: बोले, ''अब एक, दो, तीन, गिनो ।'' फिर सबने उनके निर्देशानुसार गणना शुरू की । गिनती जब पचास तक पहुँची, तो उन्होंने आदेश दिया, ''रुक जाओ ! दाहिने मुड़ो ! मार्च करो ! भण्डारे में जाओ ।'' अत: वे पचास लोग भण्डारा खाने गये । ऐसे मामलों में महाराज बड़े ही विनोदप्रिय थे ।

महाराज के जन्म-दिवस पर उन्हें फूल-मालाओं तथा पुष्प-मुकुट आदि से बड़ी सुन्दरता के साथ सजाया गया था । दूसरे दिन उन्होंने हमें आदेश दिया कि हम वह सब ले जाकर स्वामी शुद्धानन्द को सजाएँ और उन्हें घेरकर कीर्तन करें । शुद्धानन्दजी उस समय आंगन में बैठे हुए थे । हमने सब कुछ ले जाकर उन्हें सजाया और खोल-करताल आदि के साथ कीर्तन गाते हुए उनके चारों ओर नाचने लगे । तब महाराज धीरे-धीरे नीचे उतरे और वहाँ चल रही लीला देखकर मन्द हास्य के साथ निकट से होकर चले गये । इस प्रकार के मनोविनोद करना उन्हें खूब प्रिय था ।

एक बार मद्रास में एक व्यक्ति ठाकुर को भोग देने के लिये एक थाल में तरह-तरह की मिठाइयाँ सजाकर शशि महाराज के पास ले आया । शशि महाराज वह थाल लेकर महाराज के पास गये और बोले, ''राजा, खा लो ।'' राजा महाराज बोले, ''मेरी तबीयत अच्छी नहीं है । पेट में गडबड़ है, कल से ही साबूदाना ले रहा हूँ – यह सब जानकर भी तुम मुझसे ये गरिष्ठ चीजें खाने को कह रहे हो ।'' शशि महाराज बोले, ''राजा, तुम नहीं, बल्कि ठाकुर ही तुम्हारे माध्यम से खायेंगे । अत: स्वीकार कर लो ।'' इस पर राजा महाराज ने खाना शुरू कर दिया और उसका तीन-चौथाई हिस्सा समाप्त कर दिया, तो भी उन्हें कुछ नहीं हुआ ।

महाराज जब दक्षिण-भारत में आये थे, तो शशि महाराज उन्हें वहाँ के विविध मन्दिरों में ले गये, जिनमें मदुरा का मन्दिर भी एक है । दक्षिण भारत में ऐसी प्रथा है कि वहाँ के मन्दिरों के गर्भगृह में विग्रह के समीप पुजारी को छोड़ अन्य किसी को प्रवेश नहीं करने दिया जाता । शशि महाराज राजा महाराजा को अन्दर ले जाना चाहते थे । उन्हें पता था कि अन्दर जाने पर उनकी जाति पूछी जायगी और मुश्किल की बात तो यह थी कि महाराज कायस्थ कुल में जन्मे थे । अत: शशि महाराज, ''आलवार ! आलवार !'' कहते हुए राजा महाराज को अन्दर ले गये । दक्षिण में वैष्णव तथा शैव सम्प्रदाय के अनेक सन्त-महात्मा हुए हैं, जिनमें वैष्णव सन्तों को आलवार तथा शैव सन्तों को नायनार कहते हैं । अत: जब वे – ''आलवार ! आलवार !'' कहते हुए महाराज को अन्दर ले गये (दोनों ही थोड़े स्थूलकाय थे), तो कोई बाधक नहीं हुआ । उन्होंने महाराज को जगन्माता के विग्रह के सम्मुख ले जाकर खड़ा कर दिया और अन्दर खड़ा पुजारी यह सब देखता हुआ, महाराज की ओर टकटकी लगाये चित्रलिखा-सा खड़ा रह गया । तो इस प्रकार शशि महाराज उन्हें मन्दिर के भीतर ले गये थे ।

जहाँ तक मुझे स्मरण है, वाराणसी में महाराज ने देखा कि 'रामनाम-संकीर्तन' के समय के एक वृद्ध व्यक्ति सबके पहले ही आकर बैठ जाते हैं और समाप्ति पर सबसे अन्त में लौटते हैं । महाराज जान गये थे कि वे महावीर हनुमानजी हैं । अत: उस दिन के बाद से उन्होंने महावीरजी के लिये एक और आसन लगवाने की व्यवस्था कर दी ।

तिरुपति मन्दिर में जाकर उन्होंने सब दर्शन आदि किये । उनके साथ रामू था । उन्होंने रामू से पूछा, ''यह किसका मन्दिर है ।'' रामू ने बातया कि यह श्री रामानुजाचार्य द्वारा स्थापित विष्णु-मन्दिर है ।'' राजा महाराज बोले, ''पर समझ में नहीं आता कि मुझे क्यों विष्णु का नहीं, जगदम्बा का दर्शन हुआ । इसका क्या तात्पर्य है? ऐसा क्यों हुआ?'' रामू ने वहाँ पूछताछ की, तो पता चला कि तिरुपति में मूलत: देवी का मन्दिर था और वहाँ की पूजा-पद्धति से भी ऐसा प्रतीत होता था कि पहले वहाँ मूल विग्रह जगदम्बा का रहा होगा । यहाँ तक कि पुजारी भी वहाँ समवेत लोगों के समक्ष अपनी स्वीकृति देते हुए बोला, ''हाँ, यह पहले माँ का मन्दिर था । रामानुज ने इसे विष्णु-मन्दिर में परिवर्तित कर दिया ।'' तो इतिहास ऐसा है ! भारतवर्ष के मन्दिर मानो किलों के समान हैं, जिनके देवता बदलते रहते है, और ये एक सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय को हस्तान्तरित होते रहते हैं । यही है हमारी सांस्कृतिक उन्नति का इतिहास और राजा महाराज को अपने दर्शन में मालूम हो गया कि मूलत: यह जगदम्बा का मन्दिर है ।

स्वामीजी के देहत्याग के बाद श्री माताजी[५] कई वर्षों से बेलूड़ मठ नहीं आई थीं । अत: एक दिन राजा महाराज ने उनसे मठ में आकर चरणधूलि दे जाने का अनुरोध

किया । किसी-किसी का कहना है कि महाराज ने मठ के दक्षिणी द्वार से लेकर मन्दिर तक, माँ के स्वागत की व्यापक व्यवस्था की थी । उन दिनों वहीं मुख्यद्वार था और वहीं पर उन्होंने माताजी का भव्य स्वागत किया । वहाँ से वे ऊपर मन्दिर में गईं और उसके बाद महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द) के कमरे में गईं । आप में से बहुत-से लोग बेलूड़ मठ हो आये हैं । आपको स्मरण होगा कि महापुरुष महाराज के कमरे की बड़ी खिड़की के पास एक छोटा-सा बरामदा है । पहले वह बरामदा नहीं था, उसका निर्माण बाद में महापुरुष महाराज की सुविधा के लिये हुआ था । माँ कमरे में जाकर उस दरवाजे के आकार की खिड़की के समीप बैठीं और वहाँ से मठ के प्रांगण में हो रहा कीर्तन देखने लगीं । थोड़ी देर बाद वहाँ नृत्य शुरू हुआ, जिसमें महाराज भी नाच रहे थे । भाव के आवेग में महाराज अपने आपको सँभाल नहीं पाते थे और उनके गिर जाने का अन्देशा था । अत: बाबूराम महाराज उन्हें सहारा देकर अन्दर ले आये और स्वामीजी के कमरे के पश्चिम की ओर के कमरे[६] के ठीक नीचे के कमरे में उन्हें लिटा दिया । काफी देर तक जब उनकी चेतना नहीं लौटी, तो किसी ने जाकर माताजी को इसकी सूचना दी । माँ ने आकर उनकी छाती का स्पर्श किया और वे होश में आ गये । किसी-किसी का कहना है कि माताजी के प्रसाद खिलाने पर धीरे-धीरे उनकी संज्ञा लौट आई थी । अस्तु, माताजी बोलीं, ''नृत्य करते हुए राखाल का समाधि में चले जाना कोई विस्मय की बात नहीं है, क्योंकि उसके पीछे ही मैंने ठाकुर को भी नाचते हुए देखा था ।''

हमारे एक स्वामीजी काफी दिनों तक अर्जेंटीना में रहे थे । अब उनका देहावसान हो चुका है । महाराज के वाराणसी-प्रवास के समय वे भी वहीं थे । उनका नाम था पशुपति महाराज । एक दिन महाराज ने पूछा, 'पशुपति, क्या तुमने तिल-भाण्डेश्वर का दर्शन किया है ।'' पहले तो उनकी समझ में कुछ भी नहीं आया । वहाँ के एक शिव-मन्दिर में तिल-भाण्डेश्वर नाम का एक विशाल शिवलिंग है और ये सज्जन बड़े ही स्थूलकाय थे । इसीलिये उन्होंने कहा, ''क्या तुमने तिल-भाण्डेश्वर का दर्शन किया है?'' सभी लोग हँसने लगे । फिर पशुपति को भी सब समझ में आ गया और वे भी हँसने लगे । इस पर महाराज बोले ''मन्दबुद्धि !'' ○○○

४. इसमें सभी आश्रमों के सारे साधुओं को आमंत्रित किया जाता है
५. श्रीरामकृष्ण की लीला-सहधर्मिणी श्रीमाँ सारदा देवी ।
६. जिसमें सूर्य महाराज (स्वामी निर्वाणानन्दजी) निवास करते थे ।

यह हो तुम्हारा ध्यान

स्वामी एकात्मानन्द

निर्भीक साहसी बनो, यह हो तुम्हारा ध्यान।
उठो जागो ऐ वीरो, छोड़ो कायरता अज्ञान।।
आगे बढ़ो रुको नहीं, पीछे मुड़कर मत देखो।
वीर बनो कर्मठ बनो, दोष किसी का मत देखो।।
तुम्ही हो अपने भाग्यविधाता, हे अमृत के अधिकारी।
आह्वान यह आत्मज्ञान का, सुनो भारतीय नर-नारी।।
चरित्रवान युवकों का दल जग का काया कल्प करेंगे।
अमितशक्ति के वीर्यपुत्र, जीवन का भाग्य बदल देंगे।।
आत्मविश्वासी सिंहपुरुषों का हो सदा साहसी तन्त्र।
आत्मनोमोक्षार्थंजगद्धिताय का हो बहुजनसुखाय मन्त्र।।

पुनः लें अवतार जगत में

कुन्दा दामले प्रधान

पुनः लें अवतार जगत में रामकृष्ण-विवेकानन्द।
अवनी में फिर से बिखरे सुख शान्ति आनन्द।।
माँ सारदा की ममता घर-घर माताओं में जागे।
बाल-किशोर-युवा सबमें देशप्रेम अब जागे।।
ईश्वरमय हो विशुद्ध जीवन, हृदय होवे पावन।
शान्ति प्रेम विश्वबन्धुता का बरसे नित सावन।।

मैं भी लक्ष्य पा जाऊँगा

आनन्द बत्ता

हृदय में धारण कर उनको, ले आशीष सदा सिर पर।
अनुप्राणित है रोम-रोम, हैं साथ प्रभु मम पग-पग पर।।
विजय-यात्रा नहीं रुकेगी, नस-नस में है यह विश्वास।
लक्ष्य नहीं भोग-विषयों का, नहीं नाम कीर्ति-यश-पाश।।
उनकी कृपा से उनको पाकर उनका ही बन जाऊँगा।
विलक्षण पथिकों सदृश मैं भी लक्ष्य पा जाऊँगा।।

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

७४. धर्मान्धों का आदिपुरुष घण्टाकर्ण

एक विचार को अपनाओ और उसी को अपना इष्ट बनाकर उसे रूपायित करने के लिये अपनी सारी शक्ति लगा दो । दिन-पर-दिन उसका तब तक अभ्यास करते रहो, जब तक कि तुम्हें उसके फलस्वरूप अपनी अन्तरात्मा में विकास न दिखायी पड़े । यदि तुम सच्चाई से प्रयास करते हो, तो वह एक विचार ही फैलकर पूरे ब्रह्माण्ड को आच्छादित कर लेगा । इसे अपने आप ही विकसित होने दो, यह तुम्हारे भीतर से ही विकसित होकर बाहर प्रकट होगा । तब तुम कह सकोगे कि तुम्हारा इष्ट सर्वत्र है और सभी वस्तुओं में व्याप्त है ।

परन्तु इसके साथ ही हमें सदा स्मरण रखना होगा कि हमें दूसरों के इष्टों अर्थात् उनके ईश्वर-विषयक विचारों का भी ध्यान रखना होगा और उन्हें सम्मान देना होगा, अन्यथा तुम्हारी उपासना पतित होकर कट्टरता में परिणत हो जायेगी । एक व्यक्ति की एक प्राचीन कथा है, जो शिव का उपासक था । हमारे देश में कुछ ऐसे सम्प्रदाय हैं, जो ईश्वर की शिव के रूप में उपासना करते हैं और कुछ सम्प्रदाय उनकी विष्णु के रूप में । यह व्यक्ति शिवजी का महान भक्त था और साथ ही विष्णु के भक्तों से घोर द्वेष रखता था; यहाँ तक कि वह विष्णु का नाम तक नहीं सुनना चाहता था । भारत में विष्णु के असंख्य उपासक हैं, अत: विष्णु का नाम उसके कानों में आ ही जाता था । इससे परेशान होकर उसने अपने दोनों कानों में छेद करा लिये और उनमें छोटी-छोटी घण्टियाँ बाँध लीं । जब भी कोई व्यक्ति विष्णु के नाम का उच्चारण करता, तो वह अपना सिर हिलाकर घण्टियाँ बजाने लगता, जिससे वह विष्णु का नाम सुनने से बच जाता ।

परन्तु भगवान शिव ने उसे स्वप्न देकर बताया, ''तुम कितने बड़े मूर्ख हो ! मैं ही विष्णु हूँ और मैं ही शिव भी हूँ। ये दोनों केवल नाम मात्र के लिये ही अलग हैं । ये दोनों अलग-अलग ईश्वर नहीं हैं ।''

वह बोला, ''मुझे इसकी परवाह नहीं, परन्तु मुझे विष्णु से कुछ भी लेना-देना नहीं है ।''

उसके पास शिवजी की एक छोटी मूर्ति थी, जो बड़ी सुन्दर थी और उसने एक वेदी बनवाकर उसी पर उसकी स्थापना कर ली थी । एक दिन उसने कुछ उच्चकोटि की अगरबत्तियाँ खरीदीं और उनमें से कुछ को जलाकर अपने इष्टदेवता को अर्पित करने लगा । उसकी अगरबत्तियों में से धुँआ उठकर हवा में फैलने लगा । उसने देखा कि उसकी मूर्ति के दो हिस्से हो गये हैं – उसका आधे भाग में शिव का रूप था और बाकी आधे में विष्णु का । यह देखने के बाद वह व्यक्ति उछलकर वेदी पर चढ़ गया और विष्णु के नाक में अपनी अंगुली घुसा दी, ताकि अगरबत्ती की सुगन्ध का कण मात्र भी उसमें न जा सके ।

धीरे-धीरे वह व्यक्ति एक राक्षस बन गया और शिवजी उससे तंग आ गये । घण्टाकर्ण राक्षस के नाम से वह सभी कट्टर धर्मान्धों का आदिपुरुष माना जाता है । भारत के बच्चे उसका बड़ा सम्मान और उसकी पूजा करते हैं । वह एक बड़े विचित्र प्रकार की पूजा होती है । वे उसकी मिट्टी की एक मूर्ति बना लेते हैं और हर तरह के भयंकर दुर्गन्धवाले फूलों से उसकी पूजा करते हैं । भारत के जंगलों में कुछ ऐसे भी फूल होते हैं, जिनकी दुर्गन्ध बड़ी उग्र होती है । वे उन्हीं के द्वारा उसकी मूर्ति की पूजा करते हैं और बड़ी-बड़ी लाठियों से उसे पीटते हैं । जो लोग अपने इष्टदेवता के अतिरिक्त ईश्वर के अन्य सभी रूपों से घृणा करते हैं, उन समस्त धर्मान्धों का वह आदिपुरुष माना जाता है । [CW, 9:225-226]
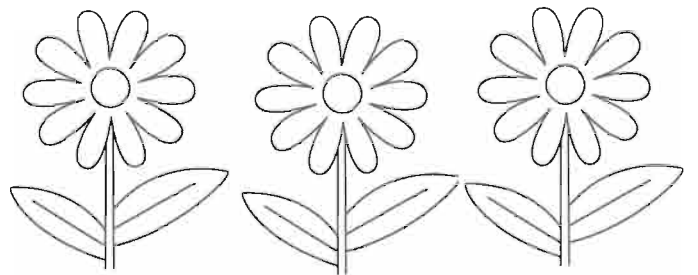
भारत की ऋषि परम्परा (६)

स्वामी सत्यमयानन्द

(भारत वर्ष के प्राचीन ऋषियों का सरल, सरस और सारगर्भित विवरण स्वामी सत्यमयानन्द जी महाराज, सचिव रामकृष्ण मिशन, कानपुर ने अपनी पुस्तक 'Ancient Sages' में किया है। विवेक ज्योति के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है। – सं.)

महर्षि भृगु

महर्षि भृगु का व्यक्तित्व तेजस्वी एवं गौरवशाली था । उनकी मुखाकृति शान्त और नेत्रों से महानता प्रदर्शित होती थी । अपनी पवित्रता और ऋषि-परम्परा से प्रसिद्ध भार्गव वंश की उत्पत्ति इन्हीं से हुई है । पौराणिक साहित्य में अन्य वैदिक ऋषियों की तरह महर्षि भृगु के सम्बन्ध में भी अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं ।

पूर्व कल्प में महर्षि भृगु से सम्बन्धित दो कथाओं का उल्लेख प्राप्त होता है । एक उनके जन्म के विषय में और दूसरी इनकी मृत्यु के विषय में है । जब ब्रह्मा चराचर जगत की सृष्टि कर रहे थे, तब भविष्य में होने वाले प्रजापतियों की उत्पत्ति उनके शरीर के विभिन्न अंगों से हो रही थी । भृगु की उत्पत्ति उनके चर्म से मानी जाती है । वे आगे चलकर एक महान आध्यात्मिक विभूति हुए और देवताओं और ऋषियों की सभा में पूजित हुए ।

द्वितीय कथा बहुत प्रसिद्ध है । दक्ष प्रजापति ने एक वैदिक यज्ञ बृहस्पतिसवन का अनुष्ठान किया, जिसमें सभी मुख्य देवता और ऋषिगण उपस्थित थे । भगवान शिव के प्रति अपना द्वेष प्रदर्शित करने के लिए दक्ष ने उनको और अपनी पुत्री (शिव की पत्नी देवी सती) को आमन्त्रण नहीं दिया । सती किसी तरह यज्ञ में गईं, किन्तु उनकी उपस्थिति को सम्मानपूर्वक स्वीकार नहीं किया गया । इस तरह स्वयं को अपमानित समझकर उन्होंने अग्नि में प्रवेश किया और भस्म हो गईं । यह संवाद पाकर शिव ने उग्र रूप धारण किया और अपने गणों के साथ मिलकर यज्ञ-स्थल, ऋत्विजगण और समागत देवताओं का संहार कर दिया । भृगु भी उन सब ऋत्विजों में एक थे और इस कलह में उनकी मृत्यु हो गई ।

विद्वानों के मतानुसार भृगु का पुनर्जन्म वैवस्वान मन्वन्तर में वरुण के पुत्र के रूप में हुआ । वरुण एक महान वैदिक देवता हैं । वेदों में अनके मन्त्रों द्वारा उनको सम्बोधित किया गया है । पुराण में एक कथा आती है । एक दिन प्रात:काल जब वरुण देव ब्रह्मयज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे, तब पवित्र अग्नि में से एक बालक की उत्पत्ति हुई । वह बालक पवित्रता आदि गुणों में विकसित होने लगा ।

महाभारत के शान्तिपर्व में एक संवाद प्राप्त होता है, जिसमें महर्षि भृगु महर्षि भारद्वाज के प्रश्नों का उत्तर दे रहे हैं । इस संवाद में दर्शन, तत्त्व-मीमांसा, ब्रह्माण्ड-विज्ञान, पुनर्जन्मवाद, नीतिशास्त्र और समाजशास्त्र का अत्यन्त गहन और प्रांजल विवेचन किया गया है ।

रामायण में वर्णन आता है कि महर्षि भृगु के शाप को फलीभूत करने के लिए भगवान विष्णु को रामावतार में सीता का वियोग सहन करना पड़ा । यह कथा इस प्रकार है : देवासुर संग्राम में असुरों को पराजय स्वीकार करनी पड़ी । असुरों की माता दिति शोकाकुल होकर महर्षि भृगु की सहधर्मिणी पुलोमा के पास सहायता माँगने गईं । पुलोमा ने करुणावश उग्र तप किया और अपनी शक्ति शेष जीवित असुरों को प्रदान की । देवों ने इस बात की जानकारी भगवान विष्णु को दी । विष्णु ने वज्रप्रहार कर पुलोमा का सर धड़ से अलग कर दिया । भृगु इससे अत्यन्त विचलित हो गए । उन्होंने शाप दिया कि भगवान विष्णु को भी उनकी तरह पत्नी-वियोग का शोक सहन करना पड़ेगा । विष्णु ने अपना चक्र भृगु की ओर फेंका । भृगु ने चक्र को अपनी ओर आता देखकर विष्णु से क्षमा माँगी । चक्र तो अपने स्थान पर पुन: लौट गया, किन्तु भृगु का शाप यथावत् रहा । तदनन्तर भृगु ने अपनी पत्नी पुलोमा को पुनरुज्जीवित कर दिया ।

श्रीमद्भागवत में एक प्रसिद्ध कथा है । ऋषियों में यह

विवाद छिड़ गया कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश, इन तीनों में कौन बड़े हैं । इसके निष्कर्ष के लिए महर्षि भृगु को चुना गया । भृगु ने निश्चय किया कि वे तीनों को क्रोधित करने का प्रयत्न करेंगे और देखेंगे कि इनमें से कौन श्रेष्ठ है । वे सर्वप्रथम ब्रह्मा के पास गए और बिना उनकी अनुमति के अपने स्थान पर बैठ गए । इससे ब्रह्मा क्रोधित हो गए । इसके बाद वे शिव के पास गए । शिव उन्हें देखकर प्रसन्न हुए और उनका आलिगंन करने के लिए आगे बढ़े, किन्तु भृगु पीछे हट गए । शिव को क्रोध आ गया और वे त्रिशूल से उन पर प्रहार करने के लिए उद्यत हो गए । इसके बाद जब भृगु विष्णु की परीक्षा के लिए उनके पास गए, तब वे सो रहे थे । उनका सत्कार नहीं हुआ, इसलिए क्रोध का स्वाँग कर उन्होंने विष्णु के वक्ष:स्थल पर लात मारी । विष्णु ने नींद से जगकर देखा कि भृगु क्रोध से तमतमा रहे हैं । भगवान विष्णु ने उनसे क्षमा माँगी और प्रेमपूर्वक उनका सम्मान किया । भृगु ने अपने जिस चरण से भगवान को लात मारी, भगवान उनके वे चरण दबाने लगे । महर्षि भृगु ने अन्त में निष्कर्ष दिया कि विनम्रता और क्षमाशीलता के गुणों के कारण भगवान विष्णु ही सबसे श्रेष्ठ हैं ।

भारतीय धार्मिक साहित्य की विशाल ज्ञान राशि में उपनिषदों का स्थान उत्कृष्ट ग्रन्थों के रूप में है । यजुर्वेद के तैत्तिरीय उपनिषद में भृगुवल्ली नामक अद्भुत अध्याय है । भृगु अपने पिता वरुण के पास जिज्ञासा लेकर जाते हैं, 'भगवन् ! मुझे ब्रह्म का उपदेश कीजिए ।' वरुण ने उत्तर दिया, 'ये प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले सभी प्राणी जिनसे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिनके सहयोग से सब जीते हैं और प्रयाण करते हुए जिसमें प्रवेश करते हैं, उसको तत्त्व से जानने की इच्छा कर ।' इस तरह वे अपने पुत्र को क्रमश: मानवीय व्यक्तित्व (व्यष्टि) के स्थूल से लेकर सूक्ष्म स्तर तक और तदनुरूप समष्टि-ब्रह्माण्ड की सत्ता का ज्ञान देते हैं । शिष्य की विलक्षण एकाग्रता उसे उत्तरोत्तर सत्य का साक्षात्कार करने में सहायता करती है और अन्त में उसे सर्वोच्च ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है ।

सर्वोच्च ज्ञान मन-वाणी से परे है, उपाधि के द्वारा ही उसका चिन्तन सम्भव है । भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि चराचर जगत में जो कुछ भी ऐश्वर्ययुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, वह उनके अंश से ही है । वे अपनी अनेक विभूतियों का वर्णन करते हैं । उनमें से एक है, 'महर्षीणां भृगुरहं' – अर्थात्, महर्षियों में मैं भृगु हूँ । ○○

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

२९५. हम तो जोगी बंदे रखें न जात-पांत के फंदे

संत रामानन्द ने श्रीसंप्रदाय के स्वामी राघवानन्द जी से प्रभावित होकर उनसे मन्त्र-दीक्षा ली और वे धर्म-प्रचार के लिए देश में भ्रमण करने निकले। वे लोगों को उपदेश देते, ब्राह्मण हो या शूद्र, सब एक ही ईश्वर की संतान हैं । इसलिए किसी के साथ किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं करना चाहिए। मंदिर के द्वार सबके लिए खुले हैं। हर कोई मंदिर जाकर भगवान के दर्शन कर उनका गुणगान करने के लिये स्वतंत्र है। यह बात जब राघवानन्दजी को मालूम हुई, तो उन्हें रामानन्दजी पर क्रोध आया। कुछ दिनों बाद जब रामानन्दजी मठ में आए, तो उन्होंने अनुभव किया कि मठ के साधु उनसे मिलने से कतरा रहे हैं। जब उन्होंने इस बारे में राघवानन्दजी से पूछा, तो उन्होंने कहा ''तुमने वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा का उल्लंघन किया है। हमारे शास्त्रों के अनुसार मंदिर में पूजा-उपासना का अधिकार ब्राह्मणों को है, शूद्रों को नहीं। तुमने इस विधान का विरोध कर शूद्रों को मंदिर में जाने के लिए उकसाकर घोर अपराध किया है। इसलिए हमने तुम्हारा बहिष्कार करने का निश्चय किया है।''

रामानन्दजी ने कोई प्रतिवाद नहीं किया और दलित बस्ती में जाकर लोगों को एकत्र कर कहा, ''मैं तुम्हें अपने गुरु का गुरुमंत्र दूँगा। तुम लोग इसका नित्य जपकर जब भी समय मिले, भगवदभजन में लीन रहो। इससे तुम्हारा उद्धार होगा।'' शिष्यों ने जब यह बात राघवानन्दजी को बताई, तो वे तुरन्तर रामानन्दजी के पास पहुँचे और उन्होंने कहा, ''क्या तुम नहीं जानते कि गुरु-मंत्र गोपनीय रहता है। तुम उसे अछूतों को देकर अपने लिए नरक का द्वार खोल रहे हो।'' रामानन्दजी ने कहा, ''यदि गुरुमंत्र देने से मुझे नरक जाना पड़े, तो मैं सहर्ष जाने को तैयार हूँ।'' रामानन्दजी के इस दो टूक जवाब से राघवानन्दजी से कुछ कहते न बना और वे वहाँ से चले गए। बाद में रामानन्दजी ने अपना मठ काशी में पंचगंगा नदी के किनारे स्थापित किया। उन्होंने कबीरादि बारह अब्राह्मणों को प्रमुख शिष्य बनाया।

सारे मनुष्य एक ही भगवान की संतान हैं। जाति, धर्म और सम्प्रदाय में भेदभाव करना उचित नहीं। मनुष्य की कोई जाति नहीं होती, कोई ऊँच-नीच नहीं होता। उच्च-नीच की भावना स्वार्थपरता और संकुचित वृत्ति की द्योतक है। हमें एक दूसरे के हितैषी बनकर समता, बन्धुता, करुणा, प्रेम औदार्य और सहानुभूति का व्यवहार कर सौहार्द बनाये रखना ही श्रेयस्कर है। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (६)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

प्रश्न – महाराज ! हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) ने महाप्रयाण के पहले कहा था – ''ब्रह्म सत्य है, जगत सत्य है।'' तो जगत कैसे सत्य है?

महाराज – जगत-रूप में सत्य नहीं है।

– जगत ब्रह्मरूप में सत्य है। तो क्या इसका अर्थ है, ब्रह्म ही जगत है?

महाराज – हाँ, यही वास्तविक बात है।

– तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि जगत है ही नहीं?

महाराज – जगत ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है, यही सत्य है। जगत नहीं हैं, केवल ऐसा कहने से यथार्थ को स्पष्ट कहना नहीं हुआ। जगत, जगत रूप में नहीं, ब्रह्म-रूप में है।

– ब्रह्म का प्रसंग आने पर तो कुछ कहना शेष नहीं रह जाता। ब्रह्म में पहुँच जाने पर और कुछ कहा नहीं जाता। मुँख बन्द हो जाता है।

महाराज – ब्रह्म शब्द को बोल रहे हैं तो?

– हाँ, उसे बोल रहे हैं।

महाराज – उससे ब्रह्म का स्वरूप तो हुआ नहीं।

– जब तक शब्द-द्वन्द्व, शब्द-ध्वनि चल रही है, तब तक वह ब्रह्मसत्ता नहीं है।

महाराज – मुख्य बात है, ब्रह्म क्या है?

ठाकुर ने कहा है – 'मुख से नहीं कहा जा सकता।' जब हमलोग ब्रह्म का उच्चारण कर रहे हैं, तो ब्रह्म की अभिव्यक्ति शब्द द्वारा हो रही है न !

– यदि हम लोग ब्रह्म का अनुभव करना चाहते हैं, तो हमें शास्त्र अर्थात् शब्द-राशि का तो अवलम्ब लेना होगा। हम लोगों का अवलम्ब तो शब्द ही है।

महाराज – यदि शब्द का अवलम्ब है, तो ब्रह्म का अनुभव नहीं कर सकते।

– तब हमलोग ब्रह्म को कैसे ग्रहण करेंगे, किस मार्ग से अनुभव करेंगे?

महाराज – अशब्दम्। शास्त्र उन्हें अशब्दम् कहता है।

अशब्दमस्पर्शमरूपव्ययं
तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं
निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते।।
(कठोपनिषद, १.३.१५)

– वे अशब्दम् – शब्दरहित हैं, किन्तु हमलोग तो शब्द के द्वारा ही उन्हें समझते हैं।

महाराज – अरे बाबा ! उनके अतिरिक्त तुमलोग हो क्या?

– वही तो। प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। पहले आपने जो कहा, लेकिन प्रत्यक्ष को भी तो स्वीकार करना पड़ रहा है।

महाराज – क्या प्रत्यक्ष का अर्थ आँख से देखना है?

– आँख से देख रहे हैं, हाँ, वह भी हो रहा है।

महाराज – नहीं, उन्हें आँख से नहीं देखा जाता।

– हमलोग अपना अनुभव तो कर रहे हैं कि हम हैं।

महाराज – बात हो रही है, ब्रह्म का स्वरूप क्या है, उसे मुख से नहीं कहा जा सकता। यह सबसे अच्छी बात है, सार बात है।

– किन्तु यह शब्द ब्रह्म नहीं है। उसे अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, इसे कौन कह रहा है?

महाराज – वह जो अज्ञान है, वह कह रहा है।

– तब क्या अज्ञान है?

महाराज – हाँ।

– तब अज्ञान मानना पड़ेगा।

महाराज – अज्ञान को नहीं मानने से कोई उपाय नहीं है, यह तो प्रत्यक्ष अज्ञान है।

– यदि अज्ञान प्रत्यक्ष हो, तो अज्ञान का कार्य भी प्रत्यक्ष होगा।

महाराज – अज्ञान के कार्य से ही तो हमलोग अज्ञान को देखते हैं। क्या अज्ञान का कोई हाथ-पैर है? अज्ञान को हमलोग कार्य द्वारा ही देखते हैं। उसका हाथ-पैर नहीं है।

– वही तो, अज्ञान का कार्य हमलोग आँखों से देख पा रहे हैं, उसी के आधार पर तो हमलोग अज्ञान को समझ रहे हैं।

महाराज – क्या उससे ब्रह्म को पकड़ सकोगे?

– इसके सिवाय दूसरा क्या उपाय है?

महाराज – उपाय नहीं है। ब्रह्म को पकड़ने का कोई उपाय नहीं है। तुम यदि ब्रह्म हो, तो ब्रह्म को कैसे पकड़ोगे?

– यदि उपाय न हो, तो उसे कौन कह रहा है?

महाराज – जो कह रहा है, वह अज्ञान है।

– हुआ न, महाराज।

महाराज – हुआ न, ऐसी बात नहीं है। ब्रह्म को कौन पकड़ेगा? यदि ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरा कोई न हो, तो ब्रह्म को कौन पकड़ेगा? ब्रह्म स्वयं ही अपने को पकड़ेगा, यदि तुम ऐसा कहो, तो उससे दोष होता है। ब्रह्म को पकड़ने वाला कोई नहीं है, तब भी दोष होगा।

– तब तो ऐसा जो ब्रह्म है, ब्रह्म के सम्बन्ध में जो कहा जा रहा है यह सब मिथ्या हो जायेगा।

महाराज – व-ही, मिथ्या ही तो। अज्ञान की निवृत्ति के लिये ही तो सब विचार है। 'तत्र वेदा अवेदा: भवन्ति'' – वहाँ वेद अवेद हो जाते हैं।

– अशब्दम्, अस्पर्शम् कहा गया है, वह तो शास्त्र शब्द द्वारा ही कह रहा है। शास्त्र जो बात कहना चाहता था, वह शब्द से ही कह रहा है।

महाराज – शब्द नहीं है, यह शब्द के द्वारा ही तो कहा जा रहा है न? शब्द को स्थापित किया जा रहा है क्या?

– पकड़ने के लिए कहा जा रहा है। स्वरूप नहीं होने पर भी उसकी बात कही जा रही है।

महाराज – 'शब्द नहीं है' अर्थात् शब्द की प्रतिष्ठा हुई क्या?

– शब्द क्यों नहीं है? ब्रह्म शब्द का उपयोग हो रहा है। वेद को ब्रह्म शब्द के रूप में उपयोग किया जा रहा है।

महाराज – शब्द द्वारा ब्रह्म को नहीं कहा जा सकता। अशब्द का अर्थ ही है कि उसका कोई शब्द नहीं है। ब्रह्म शब्द भी उनका शब्द नहीं है। ब्रह्म का अर्थ सर्वव्यापी है। जब सर्व ही नहीं है, तो उसकी व्यापकता कहाँ से होगी?

– महाराज ! उनका शब्द नहीं है, स्पर्श उनका नहीं है, तो जो वस्तु है, उसका क्या प्रमाण है?

महाराज – उनके प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। जिस वस्तु के सम्बन्ध में सन्देह रहता है, उसके लिये प्रमाण की आवश्यकता होती है। किन्तु जिस वस्तु में कोई संशय नहीं है, उसके लिये किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है।

– किन्तु संशयरहित कैसे हुआ? अशब्दम्, अस्पर्शम् जो ब्रह्म है, उसे हमलोग निस्सन्देह रूप से कैसे प्राप्त करते हैं? देख नहीं पा रहे हैं, अनुभव में नहीं आ रहा है।

महाराज – तुम लोग कौन हो? तुम लोग तो अज्ञान हो।

– ठीक बात है, हमलोग अज्ञान हो सकते हैं, किन्तु जो ब्रह्म है, यदि उसका प्रमाण न रहे, तो उस पर विचार करके क्या होगा?

महाराज – अरे बाबा ! सभी प्रमाण ब्रह्म से प्रमाणित हो रहे हैं। ब्रह्म को तो दूसरा कोई प्रमाण प्रमाणित नहीं कर सकता।

– तब तो वह नहीं है, ऐसा कहना ही अच्छा है।

महाराज – नहीं कहना, तो एक व्याख्या हुई। ऐसा नहीं है। जो कह रहा है कि ब्रह्म नहीं है, वह कौन है?

– उसे शब्द के द्वारा भी जाना जा रहा है, स्पर्श के भी द्वारा जाना जा रहा है, जो बात कर रहा है।

महाराज – यदि उनका अनुसंधान करो, उनके स्वरूप को पकड़ने का प्रयत्न करो, तो क्या कुछ प्राप्त करोगे? **(क्रमश:)**
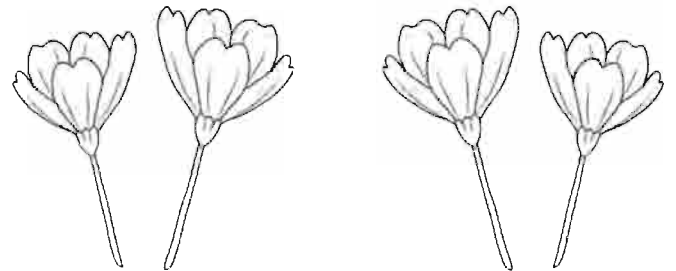
सेवानिवृत्त जीवन कैसे बिताएँ? (१)

स्वामी आत्मानन्द

जब मुझे इस कार्यक्रम के लिए यहाँ आमंत्रित किया गया, तो विशेष हर्ष हुआ। क्योंकि यह एक प्रकार की नई सूझ है, एक नए प्रकार का चिन्तन है, जो आपके सामने रखा जा रहा है। दूसरी ओर कार्यक्रम को स्वीकार नहीं कर पाने का दुख भी हो रहा था। क्योंकि इन्हीं दिनों उप-राष्ट्रपति जी का कार्यक्रम नारायणपुर में प्रस्तावित था। हमारे अस्पताल का उद्‌घाटन करने के लिए उप-राष्ट्रपति जी की तिथियाँ इन्हीं दिनों निश्चित थीं। इसीलिये मैं यहाँ आना स्वीकार नहीं कर पाया था। अब तिथियों में परिवर्तन हुआ है, उप-राष्ट्रपति जी अब मई महीने के प्रथम सप्ताह में आयेंगे, तो आपके इस कार्यक्रम में आने की सुविधा बन गई।

अभी आपने नारायणपुर की बात सुनी जहाँ हमलोग काम कर रहे हैं। बस्तर जिले का वनांचल, जिसे अबूझमाड़ कहते हैं, वह 39114 वर्ग किलोमीटर का जिला है, जो क्षेत्रफल में केरल से भी बड़ा है। ऐसे बस्तर जिले में अबूझमाड़ का यह क्षेत्र चार हजार वर्ग किलोमीटर का है, जो अभी तक किसी खाते में नहीं है। न तो राजस्व के खाते में और न ही वन के। यह किसी की भूमि नहीं है - 'सबै भूमि गोपाल की', ऐसा कह सकते हैं। किसी के नाम पर कोई पट्टा नहीं है कि कितनी जमीन है अमुक व्यक्ति की, यहाँ कोई Survey नहीं हुआ है। यहाँ के लोग अबूझमाड़िया कहलाते हैं। ये केवल आदिमजाति के ही नहीं हैं, बल्कि विशेषत: आदिमप्रजाति के हैं, जिन्हें हम अंग्रेजी में aborigine कहते हैं। यहाँ नारायणपुर तहसील में हमने आधार-शिविर बनाया और भिन्न-भिन्न प्रकार की गतिविधियाँ आरम्भ कीं।

मुझे बहुत खुशी है कि यहाँ भिन्न-भिन्न योग्य व्यक्तियों के व्याख्यान हुए हैं। मैं सुन रहा था, प्रत्येक क्षेत्र के अधिकारी विद्वानों ने बताया कि सेवा-निवृत्ति (अवकाश) के जीवन को किस प्रकार अच्छी तरह से बिता सकें। जैसे यदि पास में पैसा है, तो उसका नियोजन कैसे करें? आयकर से हमें छूट कैसे मिलेगी? हमें अपने धन का विशेष लाभ कैसे मिल सकता है? जो लोग किसी बात में विशेष रुचि रखते हैं, उस रुचि को वे कैसे आगे बढ़ा सकते हैं, आदि आदि। मुझसे कहा गया कि मैं अध्यात्म की दृष्टि से इस सेवा-निवृत्ति की तैयारी के सम्बन्ध में कुछ कहूँ। यह बात बहुत ही समीचीन है, क्योंकि मेरा क्षेत्र तो अध्यात्म है।

ईशावास्योपनिषद् के प्रथम दो मंत्रों में यह रहस्य भरा हुआ है कि हम सौ साल तक कैसे कर्मठ जीवन बिता सकते हैं। उपनिषदों के क्रम में ईशावास्योपनिषद का पहला स्थान आता है। अद्वैतवादी आचार्य शंकर ने दस उपनिषदों पर भाष्य लिखा है, जिसमें प्रथम यह ईशावास्योपनिषद है, जहाँ से वे अपने भाष्य की रचना प्रारम्भ करते हैं। उसके प्रथम दो मन्त्रों में जीने का सूत्र निहित है। पहला मन्त्र है –

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

इसका अर्थ है, यह जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, वह ईश्वर से आवृत है। ईश्वर शब्द ईश् धातु से उत्पन्न है, जिसका तात्पर्य होता है शासन करना। एक ऐसी सत्ता है, जो सब पर शासन करती है। वैज्ञानिक कितना भी निरपेक्षवादी बनने की चेष्टा क्यों न करें, क्यों न कहें कि मैं ईश्वर में विश्वास नहीं करता हूँ, फिर भी वह एक ऐसी सत्ता में तो विश्वास करता है, जो सत्ता अतिअभिज्ञ है। जिसे आइन्स्टीन ने Super Intelligent Power कह कर पुकारा है। लिंकन बारनेट की विज्ञान पर लिखी हुई एक छोटी-सी पुस्तक है । इसका नाम हैं 'The Universe and Dr. Einstein'। डॉ. आइन्स्टीन ने भौतिकी में जो खोज की, उन सबका सुन्दर वर्णन बार्नेट ने किया है। वहाँ पर एक बड़ा ही सुन्दर प्रश्न लिंकन बार्नेट ने उठाया – Does Einstein believe in God ? (क्या आइन्स्टीन ईश्वर में विश्वास करते हैं?) जब यह पुस्तक लिखी गई, तब आइन्स्टीन जीवित थे। उसका उत्तर स्वयं बार्नेट ही देते हैं – "Yes Einstein believe in God ? (हाँ आइन्स्टीन ईश्वर में विश्वास में करते हैं?) ईश्वर की परिभाषा आइन्स्टीन के अनुसार क्या है? तो वहाँ पर ईश्वर की बड़ी सुन्दर

परिभाषा आइन्स्टीन ने दी है। वे कहते हैं – 'जब मैं इस संसार की ओर देखता हूँ, नक्षत्रों को देखता हूँ, तारों की दुनिया को देखता हूँ, तो ऐसा लगता है कि इनके पीछे एक नियामक शक्ति है, और ऐसी जो भी शक्ति है, वह जड़ नहीं है। एक नियामक शक्ति वही हो सकती है, जिसमें चेतना है, बौद्धिकता है। इसलिए वे कहते हैं, 'यदि मुझसे कोई पूछता है कि क्या तुम ईश्वर में विश्वास करते हो? तो मैं कहता हूँ, 'हाँ'। जब कोई पूछता है, 'तुम्हारी ईश्वर की धारणा क्या है? तब उसके उत्तर में कहता हूँ, ''इस विश्व में एक अदृश्य परम बौद्धिक सत्ता दिखाई देती है, जो सबका नियंत्रण कर रही है। ग्रह और नक्षत्र अपनी रेखा पर चलते हैं। सूर्य अपनी परिधि में घूमता रहता है। कहीं पर किसी प्रकार का भी व्यतिक्रम नहीं होता है। ऐसा लगता है कि सब कुछ बहुत ही सुनियोजित है। जब हम विज्ञान की अधिकाधिक गहराई में उतरते हैं, तो लगता है कि यह जड़ का खेल नहीं है। यह तो चैतन्य का खेल है। यह खेल निरंकुश एवं मनमाना नहीं, इस खेल के पीछे एक नियम दिखाई देता है। इन नियमों के होने के कारण ही आज का वैज्ञानिक उन नियमों की खोज कर पाता है।

यदि मनमाने ढंग से सब कुछ हुआ होता, तो दुनिया में नियम नाम की चीज ही नहीं होती, घटनाएँ बिना किसी नियम के घटतीं। हम जिसे दुर्घटना कहते हैं, उसके पीछे भी नियम है। ऐसी विलक्षण बात आइन्स्टीन कहते हैं। दुर्घटना उसे कहते हैं, जिसके पीछे नियम न हो। पर वस्तुत: आइन्स्टीन का कहना है कि दुर्घटना के पीछे भी नियम है। यदि हम उस नियम को जान लें, तो फिर दुर्घटना नहीं होगी, हम ऐसी दुर्घटना से अपनी रक्षा कर सकते हैं। इसलिए वे दुर्घटना को भी नियम के अन्तर्गत ही रखते हैं। संसार में सब कुछ नियम के द्वारा ही नियंत्रित है।

अब यह तो हम देखते हैं कि मनुष्य की बुद्धि कितनी ऊपर जा सकती है। जिस समय मनुष्य पहली बार अन्तरिक्ष को भेद कर चन्द्रमा पर उतरा, विज्ञानजगत के नियमों को जानकर नियमों पर हावी होने का क्या अद्भुत एवं विलक्षण अनुभव था ! मनुष्य जब तक नियम को नहीं जानता, नियम उसे चलाते हैं। किन्तु जब मनुष्य नियम को जान लेता है, तो वह नियम को चलाने लगता है। जब तक मैं किसी मशीन के नियम को नहीं जानता तब तक मशीन मुझे चलाती है, मशीन अपनी इच्छा से चली और अपनी इच्छा से बंद हो गई। किन्तु यदि मैं मशीन के नियमों को जानता हूँ, तो यदि मशीन बंद हो जाएगी, तो मैं मशीन फिर से चला लूँगा, भले ही मशीन चलना स्वीकार करे या न करे। मैं पुन: अपनी बात को दुहराता हूँ, ''जब तक हम नियम को नहीं जानते, नियम हमें चलाते हैं।'' जब तक मैं गुरुत्वाकर्षण के नियम को नहीं जानता था, तब तक यह नियम मुझे चलाता था। पर जब मैंने गुरुत्वाकर्षण के नियम को जान लिया, तो उस पर मेरा अधिकार हो गया, मैं आकाश में उड़ने लगा। अंतरिक्ष के नियमों को जानकर मैंने अंतरिक्ष को भेद दिया। चन्द्रमा पर जो नियम कार्यरत हैं, उनको जान लिया, तो चन्द्रमा की सतह पर जाकर उतर गया। अत: नियमों को जान लेने से मनुष्य उतना ही शक्तिशाली बन जाता है।

तो आइन्स्टीन कहते हैं कि इस सम्पूर्ण संसार को, विश्व-रचना को देखने से ऐसा लगता है कि इसमें एक नियम विद्यमान है, एक बौद्धिक सत्ता है और इस बौद्धिक सत्ता को ही मैं ईश्वर के नाम से पुकारता हूँ।

हम ईशावास्योपनिषद् के पहले सूत्र ईशावास्यमिदंसर्वं... पर चर्चा कर रहे थे। इसका अर्थ मैं बता रहा था कि ईश के द्वारा यानि ईशन करनेवाले तत्त्व से, जो सत्ता सबका नियमन करती है, उससे यह सारा विश्व ढँका हुआ है। ईशावास्य की हम दो प्रकार से व्युत्पत्ति कर सकते हैं – ईशा आवास्य और ईश आवास्य। एक तृतीय विभक्ति के अनुसार तथा दूसरी षष्ठी विभक्ति के अनुसार। तो तृतीय विभक्ति के द्वारा अर्थ होगा, 'यह जो सारा संसार है, यह ईश्वर से ढँका हुआ है'। और षष्ठी विभक्ति के अनुसार कहा जाता है, जगत्यां जगत् यत् किञ्च = ''इस गतिशील संसार में जो कुछ दिखाई देता है, उसमें भगवान बैठे हुए हैं। दो प्रकार से हम इसकी व्युत्पत्ति कर सकते हैं। वह या तो ईश्वर का वासस्थान है या फिर उन सबको तुम ईश्वर से ढँककर देखो। यह पहले सूत्र के प्रथम भाग का अर्थ है। और दूसरे भाग का अर्थ है : 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' = त्याग के द्वारा संसार का भोग करो। 'मा गृध: = लालच मत करो। कस्यस्विद्धनम्' = किसी के धन का लालच मत करो। इस जीवन में धन रखा किसका है? इस प्रकार बड़े सुंदर ढंग से यह उपनिषद् शुरू हुआ है। ऐसा लगता है कि जो व्यक्ति सामने सुनने के लिए बैठे थे, उनमें लोभ की भावना अधिक थी। उस लोभ की वृत्ति को दूर करने की दृष्टि से ही विचार व्यक्त किया जा रहा हो। उस सत्य को हमारे सामने रखने की एक-एक उपनिषद की एक-एक पद्धति है। ईशावास्योपनिषद् की भी अपनी पद्धति है कि जहाँ लालच की वृत्ति अधिक दिखाई देती है, उस

पर अंकुश लगाते हुए जीवन को हम किस प्रकार ठीक से चला सकते हैं।'' इसमें इसी का विवेचन है। दूसरे सूत्र में क्या कहा है? –

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

कहते हैं कि इस संसार में कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो। तेरे लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है कि तू कर्म में बिना लिप्त हुए इस संसार में रह सके। केवल यही एक मार्ग है। तेरे जीवन के ये सौ वर्ष कर्मठता से भरे रहें। यही संदेश है ईशावास्योयनिषद् का । अब इन दो मन्त्रों का जो मर्म है, उसे आज के चिन्तन के विषय के साथ जब हम जोड़ते हैं, तो एक अभूतपूर्व अर्थ हमारे सामने आता है। जब मनुष्य सेवानिवृत्त होने लगता है, तो उसके जीवन में एक प्रकार की हताशा आती है। उसमें कर्मठता तो बनी हुई है। अभी वह अट्ठावन साल तक काम करता रहा। अभी उसमें कर्म करने की शक्ति है, किन्तु आज वह सेवानिवृत्त हो गया। तब उसके मन में ये विचार उमड़ने लगते हैं, अब तक उपयोगी बना हुआ था, क्या अब मैं उपयोगी नहीं बना रहूँगा? क्या मैं समाज के लिए हितकर कार्य नहीं कर सकता हूँ? क्या मेरी क्षमता ही विलुप्त हो गई? मेरे अन्दर काम करने की जो मानसिकता बनी हुई थी क्या वह मानसिकता ही समाप्त हो गई? सेवानिवृत्त होने से पहले भी एक प्रकार से हतोत्साह का भाव दिखाई देता है कि बाद में मैं क्या करूँगा? मैं क्या किसी भी प्रकार समाज के लिए उपयोगी नहीं बनूँगा, ये प्रश्न मनुष्य के मन को सालते रहते हैं। यह जीवन का सत्य है कि जब मैं परिवार के लिए उपयोगी नहीं रहता हूँ, तो परिवार वालों को भी मेरी चिन्ता नहीं रही। समाज के लिए जब हम उपयोगी नहीं हैं, तो समाज को भी कोई मेरी चिन्ता नहीं रही। यही ध्रुव-सत्य है और इस सत्य में किसी प्रकार की भी शंका नहीं हो सकती। यद्यपि ये आत्मगत प्रश्न हैं। हम अपनी ओर से ऐसा सोचते हैं। यह एक पक्ष है। एक दूसरा पक्ष है, बाह्यदृष्टि का। जब कोई हमारा परिचय देता है, तो कहता है कि ये सेवानिवृत्त हैं। भले ही हम सुनकर यूँ ही झूठी मुस्कान अपनी होठों पर लाकर बात को सह लें, पर भीतर में कहीं कुछ चुभता है।

यहाँ आपके सामने जो दो सूत्र रखे गए, इन सूत्रों में यह कहा गया है कि तुम सौ वर्ष के जीवन तक उतने ही उपयोगी बने रह सकते हो, जितने उपयोगी तुम अपने सेवा-काल में थे। उपनिषद के ये दोनों सूत्र उपयोगी बने रहने के सूत्र हैं, जिससे हमारे भीतर चेतना आती है, शक्ति आती है।

मैं दो उदाहरण देना चाहूँगा। एक सज्जन जो हमारे मित्र हैं। उन्होंने Addl. Director (Agriculture) के रूप में अवकाश प्राप्त किया। चूँकि वे टेक्निकल साइड के थे, इसलिए वे Director नहीं बने, क्योंकि IAS Cadre के लोगों को ही Director बनाया जाता है। किन्तु Addl. Director के पद पर रहकर उन्होंने बहुत काम किया। उसके बाद वे छ: वर्षों तक अवकाश में रहे। उनकी शक्ति क्षीण होती गई। उन्हें ऐसा लगा कि क्या मेरे लिए कुछ भी काम नहीं है। सरकारी सेवाओं से जब हम अवकाश लेते हैं, तो गाड़ी चली जाती है, घर से टेलिफोन निकल जाता है, चपरासी विदा हो जाता है, तब मनुष्य को ऐसा लगता है कि आपत्ति के जितने भी पहाड़ थे, एक साथ टूट पड़े। जब तक वे पद में थे, गाड़ी भी थी, पास में कितने नौकर-चाकर थे, लोग कितने नजदीक थे, मानों वहाँ जी-हुजूरी बजाने के लिए लोगों का ताँता लगा रहता था। कभी भी साग-भाजी खरीदने बाजार नहीं गए। अब तो सब काम सम्भवत: उन्हें ही करने पड़ रहे हैं । इस प्रकार का मानसिक बोझ उनके सिर पर आता है। उस बोझ के कारण हमने देखा कि वे कैसे धीरे-धीरे arthritis के शिकार हो गए। शरीर में पीड़ा रहने लगी और वे अपंगता का अनुभव करने लगे। मैंने उन्हें समझाया कि आप इस प्रकार अपने बारे में क्यों सोचते हैं। हम आपकी सेवा लेना चाहेंगे। आप आइए और हमारे साथ काम कीजिए। मैंने उन्हें अबूझमाड़ में काम करने को कहा। जब अबुझमाड़ का नाम लिया और कहा कि आप तो कृषि में दक्ष रहे हैं। वहाँ हमारा experimenation तथा demonstration का जो कार्य है, आप उसके प्रभारी बनकर वहाँ काम कीजिए तथा हमारी सहायता कीजिए। जबसे वे इस कार्य में लगे, अभी एक साल हुआ है। आज उनकी चाल देखकर हम तो दंग रह जाते हैं। जो कभी लंगड़ाते हुए चलते थे, आज वह लंगड़ाहट जाने कहाँ चली गई ! उनका आत्मविश्वास बहुत प्रबल हो गया। उन्हें लगता है कि वे आज समाज के लिए उपकारी कार्य कर रहे हैं। अभी तो ऐसा कहते हैं कि महाराज ! मैं अपनी तैंतीस साल की नौकरी में समाज के लिए जितना हितकर कार्य नहीं कर सका, यहाँ एक साल में बहुत कार्य किया है। यह एक बहुत बड़ा पक्ष है। इस पक्ष को आप अपने ध्यान में अवश्य रखें। **(क्रमशः)**

भगिनी निवेदिता : भारतीय संस्कृति से परिचय

स्वामी तन्निष्ठानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

(भगिनी निवेदिता की १५० वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में उनके जीवन और सन्देश से सम्बन्धित यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठकों के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

निवेदिता के भारत आने के पूर्व स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें लिखा था, "...अधिक भावुकता कार्य में बाधा पहुँचाती है; 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'– वज्र से कठोर और पुष्प से भी मृदु, यह हमारा मन्त्र होना चाहिए। ... तुमसे उसने ठीक ही कहा है कि संकट में मैं तुम्हारे साथ रहूँगा। भारत में यदि मुझे एक रोटी का टुकड़ा भी मिले, तो तुम्हें उसका समग्र अंश प्राप्त होगा, यह तुम निश्चित जानना। ...मेरा असीम स्नेह ग्रहण करना।"

कुछ दिन कलकत्ता के दर्शनीय स्थलों के भ्रमण के बाद वे हिन्दु परिवार के लोगों से मिलने लगीं। समय मिलने पर वे अकेली शहर की गलियों में भ्रमण करतीं। तभी उनका परिचय भारतीय वैज्ञानिक और ब्राह्मसमाजी डॉ. जगदीश चन्द्र बसु तथा उनकी बहन लावण्यप्रभा बसु से हुआ। लावण्यप्रभा बसु एक विद्यालय का संचालन करती थीं। निवेदिता का टैगोर परिवार से भी परिचय हो गया। उन्होंने कु. बोस की पाठशाला, बैथून महाविद्यालय जैसी शैक्षणिक संस्थाएँ देखी।

इसी बीच अमेरिका से कु. जोसेफाइन मैक्लाउड तथा श्रीमती सारा सी. बुल भी भारत आई थीं। निवेदिता कु. मैक्लाउड से लन्दन में ही मिल चुकी थीं। स्वामीजी जब बोस्टन गये थे, तब वे श्रीमती बुल के अतिथि थे। कलकत्ता पहुँचने के बाद ये महिलायें एक हॉटेल में रहती थीं और बहुधा निवेदिता से मिलने आया करती थीं। कुछ समय बाद वे सभी गंगा-तट पर बेलूड़ स्थित नीलाम्बर मुखर्जी उद्यान गृह में रहने चली गईं।

भागीरथी के पावन तट पर व्यतीत समय निवेदिता के जीवन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। यह उनके प्रशिक्षण का काल था। स्वामीजी प्रतिदिन वहाँ जाकर उन्हें विशेषत: निवेदिता को भारतीय धर्म, संस्कृति, इतिहास, विज्ञान, और साहित्य के बारे में बताते। उन्हें यहाँ की सामाजिक रीति-नीति, आचार-व्यवहार के बारे में भी अवगत कराते थे। गंगा के किनारे बैठकर स्वामीजी उन्हें जीवन के उच्च आदर्श, त्याग की महिमा और भारतीय पुराणकालीन महीयसी नारियों का भी चरित्र सुनाते थे। स्वामीजी की प्रत्येक वाणी निवेदिता के मन में भारतमाता के प्रति अनन्य भक्तिभाव जगाने के लिए ही थी। इस प्रशिक्षण काल में उनका सम्बन्ध बंगाल के तत्कालीन सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक महानुभावों के साथ हुआ, जो उनके भावी जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ।

स्वामीजी ने निवेदिता को बंगाली भाषा सिखाने के लिए एक साधु को नियुक्त किया । स्वामीजी के सामने दो कर्तव्य थे, एक निवेदिता को जनसाधारण के समक्ष प्रस्तुत करना और दूसरा संघजननी श्रीमाँ सारदादेवी को केन्द्र कर संपूर्ण सनातन हिन्दू समाज के साथ निवेदिता का सम्पर्क स्थापित करना । भक्तमंडली पर श्रीमाँ का अतुलनीय प्रभाव था। यदि निवेदिता का परिचय उनसे हो जाए और वे निवेदिता को स्वीकार कर लें, तो इस देश में कार्य करना निवेदिता के लिए सरल हो जायेगा।

२७ फरवरी, १८९९ को श्रीरामकृष्ण देव का सार्वजनिक महोत्सव होने वाला था। इस महोत्सव में भाग लेने के लिये निवेदिता भी गईं। उसके बाद स्वामीजी महोत्सव में पहुँचे। वहाँ मेला लगा हुआ था। श्रीमती बुल तथा कु. मैक्लाउड वहाँ पहले ही पहुँच चुकीं थीं। वहाँ उनकी श्रीरामकृष्णदेव की शिष्या 'गोपाल की माँ' से प्रथम भेंट हुई, जिनके बारे में वे लोग पहले से ही सुन चुकी थीं। उनके स्वागत और सद्व्यवहार से ये विदेशी महिलाएँ अभिभूत हो गयीं।

दिनांक ११ मार्च को स्टार थियेटर में रामकृष्ण मिशन की उद्घाटन सभा में निवेदिता का व्याख्यान हुआ। इस समारोह की अध्यक्षता स्वामीजी ने स्वयं की। स्वामीजी की एक विदेशी शिष्या का व्याख्यान सुनने के लिए कलकत्ता का जनसमूह उमड़ पडा था। निवेदिता का परिचय देते हुए उन्होंने कहा था, "पहले ही इंग्लैण्ड ने अपने कुछ महान विद्वान हमारे इस रामकृष्ण-मिशन की सहायतार्थ दिये हैं और अब इंग्लैण्ड ने मार्गरिट नोबल के रूप में एक और बहुमूल्य उपहार हमें दिया है, जिनसे हमें बहुत-सी आशायें, अपेक्षायें हैं।" निवेदिता का भाषण सुनकर श्रोतागण अभिभूत हुए और करतल ध्वनि की। स्वामीजी निवेदिता के इस भाषण से बहुत ही प्रसन्न हुए। इस तरह स्वामीजी ने निवेदिता को कलकत्ता के लोगों से परिचित कराया । ○○○

जगदीशचन्द्र बसु

बचपन में हम देखते हैं कि घर में एक छोटा-सा स्थान तुलसी के पौधे के लिए रहता है। प्रात:काल में स्नानादि करने के बाद घर में बच्चे अपनी माँ के साथ तुलसी के पौधे की पूजा करते हैं और पानी डालते हैं। हमारी भारतीय धार्मिक परम्परा ने हमें यह जन्म से ही सिखाया है कि पौधों में भी प्राण रहते हैं। किन्तु विज्ञान तो प्रत्येक वस्तु के लिए प्रमाण माँगता है।

भारतीयों के लिए यह गर्व की बात है कि भारत के वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु ने प्रायोगिक रूप से यह सिद्ध कर दिखाया कि पौधों, वृक्ष आदि में प्राण होते हैं।

जगदीश चन्द्र बसु का जन्म ३० नवम्बर, १८५८ को हुआ था। उनके पिता का नाम भगवान चन्द्र बसु था और वे डिप्टी मजिस्ट्रेट के पद पर थे। भारत तब स्वतन्त्र नहीं हुआ था। जगदीश चन्द्र के पिता बहुत देशभक्त थे। उन्होंने अपने मोहल्ले के गरीब बच्चों के लिए भारतीय पद्धति पर आधारित पाठशाला खोली थी।

जगदीश चन्द्र की माता धार्मिक थीं और वे बचपन से ही बालक जगदीश को धार्मिक कथाएँ सुनाती थीं। बालक जगदीश में देशभक्ति, धर्म पर विश्वास आदि दैवी गुण बचपन में ही थे। जगदीश का घर गाँव में था। गाँव में अनेक धार्मिक कार्यक्रम होते थे, जिससे उसे रामायण और महाभारत सुनने का बहुत अवसर मिलता था। गाँव की स्वच्छ हवा में घूमना, वहाँ की पद्मा नदी में नाव चलाना, खेती-काम सीखना इत्यादि काम जगदीश को बहुत अच्छे लगते थे। उनका मन बचपन से ही खोजपरक था। वह अपने पिता से तरह-तरह के प्रश्न पूछता था।

११ वर्ष की उम्र में उसके पिता का स्थानांतरण कलकता में हो गया और बालक जगदीश को कलकता आना पड़ा। यहाँ उसे सेंट जेवियर्स स्कूल में प्रवेश कराया गया। यहाँ पर अधिकतर यूरोपीय व ऐंग्लो इंडियन छात्र थे। वे प्राय: भारतीय छात्रों को परेशान करते थे। उस स्कूल में एक मुक्केबाज था और वह जगदीश को धमकाता-डाँटता रहता था। यह देखकर बाकी छात्र जगदीश पर हँसते थे। एक दिन जगदीश ने उसे अच्छी तरह सबक सिखाया। तब से बाकी छात्रों का जगदीश के प्रति अच्छा व्यवहार हो गया।

छात्रावास में रहते समय जगदीश तरह-तरह के वैज्ञानिक प्रयोग करता था। १६ वर्ष की उम्र में उसे सेंट जेवियर्स कॉलेज में प्रवेश के साथ छात्रवृत्ति भी प्राप्त हुई। जगदीश पढ़ाई में बहुत तेज था। विज्ञान और गणित के अलावा संस्कृत और लेटिन जैसे विषयों पर उसका अच्छा ज्ञान था।

१९ वर्ष की आयु में उन्होंने स्नातक की डिग्री प्राप्त कर ली। उनके सामने दो विकल्प थे। एक तो अंग्रजों के अधीन रहकर सिविल नौकरी चुनना और दूसरा चिकित्सा-शास्त्र। उन्होंने चिकित्सा-शास्त्र को चुना। वे इसके लिए इंग्लैंड जाना चाहते थे। उनके माता-पिता के पास उनको विदेश भेजने के लिए पर्याप्त धन नहीं था। बड़ी कठिनाई से उनके पिता ने पैसों की व्यवस्था की और अपने बेटे जगदीश को इंग्लैंड भेजा। इस तरह जगदीश २२ वर्ष की आयु में इंग्लैंड गए।

उन्होंने वहाँ प्राकृतिक विज्ञान का विषय चुना। विश्व के बड़े विद्वानों के वे सम्पर्क में आए और उनसे शिक्षा प्राप्त की। १८८४ में २६ वर्ष की आयु में उन्हें विज्ञान में स्नातक की उपाधि प्राप्त हुई। वे अपने देश भारत लौटे और कलकता विश्वविद्यालय में अध्यापक के पद पर नियुक्त हुए।

उन्होंने भौतिकी के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए जो पूरे विश्व में नए थे। इसके लिए उन्हें सम्मान भी प्राप्त हुआ। किन्तु जिस खोज के लिए जगदीश चन्द्र जाने जाते हैं, वह है पौधों की सजीवता। उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि पौधे भी अन्य प्राणियों की तरह जीवनयापन करते हैं और संवेदनशील होते हैं। इसके लिए उन्होंने विभिन्न प्रयोग किए और इसको सिद्ध करने के लिए अनेक यन्त्रों का भी आविष्कार किया। OOO

विद्यार्थियों के लिए गीता

(स्वामी विवेकानन्द की वाणी के परिप्रेक्ष्य में भगवद्गीता का अध्ययन)

स्वामी आत्मश्रद्धानन्द

सम्पादक, वेदान्त केसरी, रामकृष्ण मठ, चेन्नई

(हिन्दी अनुवाद-संकलन - ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य)

भगवद्गीता अक्षय ज्ञान का भण्डार है। यह जीवन जीने के लिए अन्तर्दृष्टि प्रदान करने वाली महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। इसके साथ ही यह विश्वव्यापी स्तर पर अध्ययन की जाने वाली आध्यात्मिक ग्रन्थ भी है। गीता की शिक्षा विश्व के असंख्य नर-नारियों के लिए दैनिक जीवन का एक अंग बन चुकी है। नि:सन्देह गीता भारत का धर्मग्रन्थ है, लेकिन भारत के साथ ही साथ दूसरे देशों के विद्वानों, चिन्तकों, सन्तों, नेताओं, वैज्ञानिकों, आध्यात्मिक साधकों एवं साधारण जनमानस, इन सबके लिए गीता प्रेरणादायक एवं शक्ति का स्रोत है।

यद्यपि यह सत्य तथा सर्वविदित है कि गीता विद्यार्थियों में अधिक लोकप्रिय नहीं है। भारत के अधिकांश विद्यार्थियों के लिए गीता एक रहस्यमयी पुस्तक है। उनलोगों ने इसका केवल नाम सुना है तथा कुछ लोग यह जानते हैं कि यह महाभारत महाकाव्य का एक अंश है। लेकिन बहुत से युवक यह नहीं जानते कि गीता उनके व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित है। प्राय: यह भी अनुभव किया जाता है कि गीता जिन विषयों की शिक्षा देती है, वह आधुनिक विद्यार्थियों के लिए 'बहुत उच्च' होती है। यद्यपि वे गीता का सम्मान करते हैं, लेकिन सोचते हैं कि इसको समझना उनके लिए बहुत कठिन है। इसलिए वे गीता को पढ़ना पूर्ण रूप से छोड़ देते हैं या कभी बाद में सुअवसर मिलने पर पढ़ लेंगे, या कभी भविष्य में पढ़ लेंगे, जो समय कभी नहीं आता है।

वर्तमान जीवन की विभिन्न चुनौतियों और कठिनाईयों के समय में विद्यार्थी यह जानना चाहते हैं कि 'गीता हमें क्या शिक्षा दे सकती है?'

आधुनिक शिक्षा पद्धति इस विषय में अभिरुचि बढ़ाने के लिए अधिक ध्यान नहीं देती। इस समय मोबाइल फोन, एस.एम.एस, इन्टरनेट, ई-मेल, डिजीटल कैमरा, आई-पॉड, टेलीविजन इत्यादि का बेधड़क व्यवहार करने के कारण युवकों को विभिन्न प्रकार के आन्तरिक और बाहरी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। विद्यार्थियों की 'बाहरी समस्या' उनकी विभिन्न प्रकार की मानसिक चंचलता के साथ ही अपनी पढ़ाई-परीक्षा पर ध्यान केन्द्रित करने के कारण उत्पन्न होती है। विद्यार्थियों को जीवन में निश्चित लक्ष्य का अभाव, मन की एकाग्रता की कमी, समकक्ष प्रतिद्वन्दिता तथा उपभोक्तावादी और स्वार्थमय जीवन के कारण 'आन्तरिक समस्या' का सामना करना पड़ रहा है। उच्च जीवन के आदर्श जैसे सत्यवादिता, सच्चाई, नि:स्वार्थता, कृतज्ञता-बोध, आत्मसंयम, आत्मत्याग, अनुशासन इत्यादि स्वस्थ एवं सशक्त व्यक्तित्व के मूल आधार हैं, जिनकी आज उपेक्षा की जा रही है। इसलिए अभिभावक, माता-पिता, शिक्षक तथा विद्यार्थियों में से भी कुछ बुद्धिमान विद्यार्थी, विद्यार्थियों के ऐसे व्यवहार तथा सामान्य जीवन-धारा से दुखी और निराश हैं।

भगवद्गीता के पास युवा मन को देने के लिए बहुत कुछ है। सामान्य धारणा के विपरीत, नवयुवक जो विद्यार्थी हैं तथा भविष्य के लिए सोच रहे हैं, गीता उनको बहुत-से व्यावहारिक सुझाव तथा सहायता प्रदान कर सकती है। गीता केवल दार्शनिक विचारों की ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक सुझावों की भी पुस्तक है। विद्यार्थी गीता के अध्ययन से बहुत सारी बातें सीख सकते हैं।

गीता का निष्ठापूर्वक अध्ययन किसी को भी एक सफल विद्यार्थी तथा बेहतर मनुष्य बना सकता है। गीता आत्मसुधार और व्यक्तित्व के विकास के लिए – जैसे मनुष्य का वास्तविक स्वरूप, मन की एकाग्रता को विकसित करना, नकारात्मक सोच को जीतना, क्रोध पर विजय, जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करना, सशक्त तथा पवित्र चरित्र का निर्माण करना, इत्यादि विभिन्न विषयों पर अनेक सुझाव तथा मार्गदर्शन प्रदान करती है।

गीता के मुख्य विचारों का संग्रह छात्रों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया गया है। प्रिय विद्यार्थियो ! इसका अध्ययन करने पर आप अवश्य पायेंगे कि गीता कैसे मानव-जाति द्वारा चिन्तन किए गए कुछ सर्वश्रेष्ठ विचारों का सार है तथा कैसे यह आपके व्यक्तिगत एवं सामाजिक

जीवन को समृद्ध कर सकती है। इसको पाठ करने से गीता में विद्यमान ज्ञान का सौंदर्य आपके समक्ष प्रकट होगा और शान्ति से पढ़ने और उस पर बार-बार चिन्तन करने से आपको उसका गम्भीर एवं नया अर्थ ज्ञात होगा।

भगवद्‌गीता के विषय में जानने योग्य कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

१. भगवद्‌गीता सामान्यत: गीता के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। संस्कृत में गीता का अर्थ होता है – गीत। चूँकि यह गीत भगवान के अवतार श्रीकृष्ण ने गाया, इसलिए इसे भगवद्‌गीता कहते हैं। यद्यपि अन्य गीता भी हैं, जैसे - हंसगीता, अवधूतगीता, अष्टावक्रगीता आदि। लेकिन केवल भगवद्‌गीता के लिए ही 'गीता' शब्द का प्रयोग करते हैं।

२. गीता में ७०० श्लोक हैं, जो १८ अध्यायों में विभक्त हैं। गीता महाभारत महाकाव्य का एक अंश है। (भीष्म पर्व में अध्याय २५ से ४२ तक।)

३. गीता का प्रत्येक अध्याय एक योग है और प्रत्येक का एक नाम है, जैसे - ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग इत्यादि। यह नाम प्रत्येक अध्याय के अन्त में दिया गया है।

४. यह पुस्तक अर्जुन और श्रीकृष्ण का संवाद है। अर्जुन के विभिन्न नाम हैं, जैसे पार्थ, पाण्डव, भारत, महाबाहो, कौन्तेय आदि। अर्जुन पाँच-पाण्डव भाइयों में से एक थे। वे अपने ही राज्याधिकार से वंचित कर दिये गये थे तथा प्रतिद्वन्द्वी चचेरे भाई कौरवों द्वारा बार-बार उत्पीड़ित होते रहे । सभी सन्धि-वार्ता और विकल्पों में असफल होने के बाद पाण्डव कौरवों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए विवश हुए।

५. भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को परामर्श देते समय व्यक्तिगत सर्वनाम 'मुझे' का उपयोग किया है। गीता में 'मैं' या 'मुझे' भगवान या परमात्मा हेतु प्रयोग किया गया है।

६. इसके साथ ही आत्मा शब्द का प्रयोग शरीर, मन या अहंकार को बताने के लिए भी किया गया है। गीता में आत्मा शब्द का प्रयोग हमारी अन्तरात्मा (या ईश्वरत्व) के लिए किया गया है।

७. कौरवों के नेत्रहीन पिता धृतष्टराष्ट्र के सारथि संजय थे। उन्हें युद्ध देखने और युद्ध में क्या हुआ इसे बताने के लिए दिव्य-चक्षु का वरदान मिला था। धृतराष्ट्र ने संजय से पूछा, 'युद्धभूमि में क्या हुआ?' इसी प्रश्न से गीता आरम्भ होती है। संजय ने कहा, कौरवश्रेष्ठ दुर्योधन ने राजगुरु द्रोणाचार्य के पास जाकर उन्हें अपने तथा पाण्डवों, दोनों ओर के योद्धाओं का परिचय दिया। उसके बाद दोनों ओर से युद्ध प्रारम्भ करने के प्रतीक शंख बजाए गए ।

८. अर्जुन ने अपने सारथि श्रीकृष्ण से अनुरोध किया कि वे रथ को युद्धभूमि में दोनों सेनाओं के बीच में ले चलें। अर्जुन ने अपने पितामह तथा गुरु भीष्म और द्रोण को देखा। वे उनसे युद्ध करने के स्थान पर भयभीत और दुखित हो गये। उन्होंने किंकर्तव्यविमूढ़ होकर श्रीकृष्ण से कहा कि युद्ध करना व्यर्थ है तथा यह विभिन्न प्रकार के दुष्परिणामों जैसे - समाज और राज्य-विध्वंस आदि का कारण बनेगा। वे धनुष-बाण छोड़कर शोकाकुलचित्त से रथ के पीछे बैठ गये। उन्होंने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की – मेरे लिए क्या कल्याणकर है, उसे बताने की कृपा करें। आगामी श्लोकों के द्वारा श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं। इसे संजय ने धृतराष्ट्र को बताया और हमें महान ऋषि वेदव्यास द्वारा प्रणीत महाभारत महाकाव्य में गीता जैसा ग्रन्थ उपहारस्वरूप प्राप्त हुआ।

९. श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उनके क्षत्रिय धर्म को पुन: स्मरण दिलाया तथा युद्ध को न्यायसंगत बताया। उन्होंने अर्जुन को संपूर्ण शोक, आशंका को त्यागकर युद्ध करने का परामर्श दिया। पहले अर्जुन युद्ध करना चाहते थे, लेकिन युद्धभूमि में महान योद्धाओं को देखकर भयभीत हो गये। इस वृत्तान्त से मानव-मन की तुलना की गई है। वह जीवन-संग्राम में विजय चाहता है, लेकिन जैसे ही समस्याएँ आती हैं, वह पूरा उत्साह, धैर्य तथा साहस खो देता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को उनकी कायरता के लिए धिक्कारते हैं तथा उनके संशय और भ्रम को दूर करते हैं।

१०. श्रीकृष्ण अर्जुन को उनके हृदय में स्थित दिव्य आत्मशक्ति और ज्ञान की ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हैं।

११. यह युद्ध हरियाणा राज्य के छोटे से शहर कुरुक्षेत्र में हुआ था, ऐसा माना जाता है। कुरुक्षेत्र नई दिल्ली से १२० किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित है और इसके आसपास महाभारत युद्ध से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण स्थल हैं।

१२. कुरुक्षेत्र के युद्ध को मानव जीवन-संग्राम के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है। जहाँ पाण्डव सज्जनता, अच्छाई के द्योतक हैं तथा कौरव दुर्जनता, अपवित्र, असंयमित एवं अविवेकी मन से उत्पन्न बुराई के द्योतक हैं।

१३. गीता हमें सकाम तथा निष्काम कर्म का फल, ध्यान की पद्धति, भगवान पर भक्ति, अपने स्वभाव और क्रोध पर नियंत्रण करना तथा आध्यात्मिक, नैतिक और शारीरिक सशक्तिकरण और मुक्ति कैसे प्राप्त करें, इत्यादि विभिन्न विषयों की विस्तृत शिक्षा प्रदान करती है।

१. दिव्यता ही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।२.२३।।

– शस्त्र इस आत्मा को नहीं काट सकते। अग्नि इस आत्मा को नहीं जला सकती। जल इसे गीला नहीं कर सकता और वायु इस आत्मा को नहीं सुखा सकती।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – 'अमृत के पुत्रो' – कैसा मधुर और आशाजनक सम्बोधन है यह ! बन्धुओ ! मैं आपको इसी मधुर नाम – अमृत के अधिकारी से सम्बोधित करूँ, आप इसकी आज्ञा मुझे दें। ...आप तो ईश्वर की सन्तान हैं, अमर आनन्द के भागी हैं, पवित्र और पूर्ण आत्मा हैं। (विवेकानन्द साहित्य,१.१२)

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।२.२४।।

इस आत्मा को अवयवरहित होने के कारण कोई काट नहीं सकता, जला नहीं सकता, दहन नहीं कर सकता और सुखा नहीं सकता । यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, निश्चल और सनातन है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – आत्मा भौतिक द्रव्यों का सम्मिश्रण नहीं है। यह एक तथा अविभाज्य है। आत्मा का कोई रूप नहीं है, इसलिए यह आदि और अन्त से परे है। इसका अस्तित्व अनादि काल से है। जैसे काल शाश्वत है, वैसे ही मनुष्य की आत्मा भी शाश्वत है। (वि.सा.२.२१६)

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।२.२२।।

– जिस प्रकार मनुष्य जीर्ण वस्त्रादि का परित्याग कर दूसरे नये वस्त्र ग्रहण करता है, उसी प्रकार शरीरी जीव जीर्ण शरीर को छोड़कर दूसरे नये शरीर धारण करता है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – विश्व में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जो अपरिवर्तनशील को परिवर्तित कर सके। यद्यपि इस शरीर का आदि और अन्त है, किन्तु शरीर में रहनेवाला असीम और अनन्त है। ...यह जानकर उठो और युद्ध करो। एक पग भी पीछे न रखो, यही भाव है... जो भी आये, उससे संग्राम करो। आकाश से नक्षत्र भले ही हट जायँ ! सारा संसार हमारे विरुद्ध क्यों न खड़ा हो जाय! मृत्यु का अर्थ केवल वस्त्रों का परिवर्तन है। (वि. सा. ७.२९६)

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।।२.३०।।

– हे अर्जुन, यह आत्मा सबके शरीर में सदा अवध्य है, इसलिए तुम्हें सभी जीवों की मृत्यु से शोक नहीं करना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – कोई भी सत्य, प्रेम तथा निष्कपटता को रोक नहीं सकता। क्या तुम निष्कपट हो? क्या मरते दम तक नि:स्वार्थ और प्रेमपरायण हो? तब डरो नहीं, मृत्यु से भी मत डरो। मेरे वीरो ! आगे बढ़ो ! (वि. सा. २.३९६)

२. तुम अपने भाग्य-निर्माता हो

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।६.५।।

– अपने द्वारा अपना उद्धार करें । अपनी बुद्धि को नीचे न जाने दें । क्योंकि मनुष्य स्वयं की स्वयं का मित्र है और स्वयं ही स्वयं का शत्रु है ।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – स्वयं कठिनाइयों से मुक्त हो जाओ ! कोई तुम्हारा सहायक नहीं है और न कभी था। अपनी रक्षा स्वयं करो। (वि.सा.९. ८४)...डरो मत। कितनी बार असफलता मिलेगी, यह न सोचो। चिन्ता न करो। काल अनन्त है। आगे बढ़ो, बारम्बार अपनी आत्मा में प्रतिष्ठित होओ। प्रकाश अवश्य ही आयेगा। (वि. सा.९.१२८)

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।६.६।।

जिस व्यक्ति ने विवेकयुक्त बुद्धि से मन पर विजय प्राप्त कर ली है, उस जीव का वह मन ही मित्र है और जिसका मन अविजित, असंयमित है, वह मन ही शत्रुवत् व्यवहार करता है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – अनियंत्रित और अनिर्दिष्ट मन हमें सदैव उत्तरोत्तर नीचे की ओर घसीटता रहेगा, हमें चीथ डालेगा, हमें मार डालेगा और नियन्त्रित तथा निर्दिष्ट मन हमारी रक्षा करेगा, हमें मुक्त करेगा। (वि. सा. ४.११४) **(क्रमशः)**

प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका

श्रीशंकराचार्य

कुत्र विषं दुष्टजने किमिहाशौचं भवेदृणं नृणाम् ।
किमभयमिह वैराग्यं भयमपि किं वित्तमेव सर्वेषाम् ।।४१।।

प्र. विष कहाँ रहता है?

उ. दुर्जन मनुष्य में विष रहता है ।

प्र. इस संसार में अशुद्धि क्या है?

उ. मनुष्यों के लिए ऋण ही अशुद्धता की भावना के समान है ।

प्र. संसार में अभय वस्तु कौन सी है?

उ. वैराग्य ही अभय है ।

प्र. फिर भय क्या है?

उ. धन ही सबके लिए भय है ।

का दुर्लभा नराणां हरिभक्तिः पातकं च किं हिंसा ।
को हि भगवत्प्रियः स्यात् योऽन्यं नोद्वेजयेदनुद्विग्नः ।।४२।।

प्र. मनुष्यों में दुर्लभ क्या है?

उ. हरिभक्ति मनुष्यों में दुर्लभ है ।

प्र. पाप क्या है?

उ. हिंसा करना पाप है ।

प्र. भगवान को प्रिय कौन है?

उ. जो स्वयं उद्वेग-रहित है और दूसरों को भी उद्विग्न नहीं करता, वह भगवान को प्रिय है ।

कस्मात् सिद्धिः तपसः बुद्धिः क्व नु भूसुरे कुतो बुद्धिः ।
वृद्धोपसेवया के वृद्धा ये धर्मतत्त्वज्ञाः ।।४३।।

प्र. किससे सिद्धि (सफलता) प्राप्त होती है?

उ. तपस्या से सिद्धि प्राप्त होती है ।

प्र. बुद्धि कहाँ रहती है?

उ. ब्राह्मण (के समान व्यक्ति) में बुद्धि रहती है ।

प्र. इस प्रकार की बुद्धि कहाँ से प्राप्त होती है?

उ. वृद्धों की सेवा से बुद्धि प्राप्त होती है ।

प्र. वृद्ध कौन हैं?

उ. धर्म-तत्त्व को जानने वाले वृद्ध हैं ।

संभावितस्य मरणादधिकं किं दुर्यशो भवति ।
लोके सुखी भवेत् को धनवान् धनमपि च किं यतश्चेष्टम् ।।४४।।

प्र. सम्मानित व्यक्ति के लिए मृत्यु से भी अधिक दुखदायक क्या है?

उ. अपयश ।

प्र. संसार में सुखी कौन है?

उ. धनवान संसार में सुखी है ।

प्र. धन क्या है?

उ. जिससे इच्छित वस्तु प्राप्त हो, वही धन है ।

सर्वसुखानां बीजं किं पुण्यं दुःखमपि कुतः पापात् ।
कस्यैश्वर्यं यः किल शंकरमाराधयेद् भक्त्या ।।४५।।

प्र. सब सुखों का मूल क्या है?

उ. पुण्य सभी सुखों का मूल है ।

प्र. दुख किससे होता है ।

उ. पाप-कर्म से दुख होता है ।

प्र. ऐश्वर्य किससे प्राप्त होता है?

उ. भक्तिपूर्वक भगवान शंकर की आराधना करने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।

को वर्धते विनीतः को वा हीयेत यो दृप्तः ।
को न प्रत्येतव्यो ब्रूते यश्चानृतं शश्वत् ।।४६।।

प्र. कौन (जीवन में) बढ़ता अथवा प्रगति करता है?

उ. जो विनयशील है वह जीवन में बढ़ता है ।

प्र. कौन हीन है?

उ. जो अभिमानी है, वह हीन है ।

प्र. किसका विश्वास नहीं करना चाहिए?

उ. जो सदैव झूठ बोलता है, उसका विश्वास नहीं करना चाहिए ।

कुत्रानृतेऽप्यपापं यच्चोक्तं धर्मरक्षार्थम् ।
को धर्मोऽभिमतो यः शिष्टानां निजकुलीनानाम् ।।४७।।

प्र. किस अवस्था में झूठ बोलने पर भी पाप नहीं होता?

उ. धर्मरक्षा के लिए झूठ बोलना पाप नहीं होता है ।

प्र. धर्म क्या है?

उ. जो स्वयं के कुलीन शिष्टों के अभिमत हो, उसे धर्म कहते हैं ।

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (६)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन की प्रेरणाप्रद प्रसंगों का सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिंग्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monastries' में किया है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

भगवान नि:स्वार्थ प्रार्थनाएँ सुनते हैं

स्वामी प्रणवात्मानन्द जी (पशुपति महाराज) (१९०४-१९७५) एक संन्यासी के साथ कश्मीर की तीर्थयात्रा पर गये थे। एक दिन वे दोनों मीलों पैदल चलने के बाद अपराह्न में पर्वत-शिखर पर स्थित एक गाँव में पहुँचे। वे दोनों बहुत थक चुके थे, उन्हें विश्राम की आवश्यकता थी। रात व्यतीत करने के लिए उन्हें आश्रय-स्थल की भी जरूरत थी। एक ग्रामीण ने उन दोनों को देखा और अपने घर में रहने के लिए आमन्त्रित किया।

यद्यपि उस गाँव में अधिकतर मुस्लिम परिवार रहते थे, तथापि उनका मेजबान हिन्दू था। दोनों संन्यासियों की अपने घर में अच्छी व्यवस्था करने के बाद, ग्रामीण ने व्याकुलतापूर्वक प्रणाम कर कहा, ''महाराज, हमारे यहाँ कुछ महीनों से वर्षा नहीं हुई है। यदि वर्षा नहीं होगी, तो हमलोगों की सारी फसल नष्ट हो जाएगी तथा हमलोगों को भूखों मरना होगा। आप लोग साधु हैं। आपके पास यौगिक शक्तियाँ हैं। दया करके आप हम लोगों के लिए वर्षा करा दीजिए।'' इतना कहकर वह ग्रामीण चला गया।

सूर्यास्त हो चुका था। पहाड़ी गाँव में चारों ओर अँधेरा फैला हुआ था। सायंकालीन साधना का समय होने पर स्वामी प्रणवात्मानन्द जी ने अपने संन्यासी-बन्धु से कहा, ''देखो, हम पर उस व्यक्ति की कितनी श्रद्धा है ! वह सोचता है कि हम उन लोंगो के लिए वर्षा करा सकते हैं। लेकिन हमारे पास तो कोई सिद्धि-चमत्कार नहीं हैं और चूँकि हम श्रीरामकृष्ण देव के भक्त हैं, इसलिए इन वस्तुओं की लालसा भी नहीं रखते। ऐसा लगता है कि श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना करने के अलावा हमारे पास और कोई उपाय नहीं है। यदि उनकी (श्रीरामकृष्ण) इच्छा होगी, तो वे वर्षा करायेंगे।''

तत्पश्चात् कमरे का दरवाजा बन्द कर दोनों संन्यासी आसन पर बैठे और कातर भाव से श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना करने लगे। वे अपनी प्रार्थना में इतने तन्मय हो गये कि उन्हें समय का बोध नहीं रहा। अकस्मात् जोर से दरवाजा खटखटाने की आवाज आयी। जब उन्होंने दरवाजा खोला, तो उनका मेजबान तेजी से कमरे में घुसा और उनके चरणों में गिर पड़ा। भाव के आवेग में वह रोते हुए बोला, 'बारिश आ गयी ! एक घण्टे से मुसलाधार वर्षा हो रही है। आप लोगों के कारण ही वर्षा हो रही है। आपलोगों के बारे में मैं गाँववालों को बताने जा रहा हूँ।'' उनके उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वह दरवाजा बाहर से बन्द कर चला गया।

घोर बरसात में भीगते हुए वह वापस आया। वह अपने साथ कई ग्रामीण हिन्दू-मुसलमानों को वर्षा करानेवाले साधुओं को दिखाने के लिए लेकर आया। संन्यासियों ने उन लोगों से कहा, 'हमलोगों ने वर्षा नहीं करायी है, ईश्वर की कृपा से हुई है।' लेकिन गाँववालों को यह शत-प्रतिशत विश्वास था कि इन्हीं साधुओं ने वर्षा कराकर सबकी रक्षा की है।

अगले दिन सुबह दोनों संन्यासी उस गाँव से जाना चाहते थे। लेकिन गाँववाले उन्हें विदा नहीं करना चाहते थे। वे आँखों में आँसू भरकर दोनों संन्यासियों से इसी गाँव में ही स्थायी रूप से रहने के लिए बारम्बार अनुरोध करने लगे। इसके बाद से गाँव के लोग इन दोनों साधुओं को अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देते। यद्यपि संन्यासियों की आवश्यकताएँ बहुत ही कम थीं, तथापि गाँव के लोग श्रद्धापूर्वक यथाशक्ति भोजन तथा अन्य सेवाएँ देकर उन दोनों को प्रसन्न रखने का प्रयास करने लगे।

दो-तीन दिनों के बाद स्वामी प्रणवात्मानन्द जी ने अपने संन्यासी-बन्धु से कहा, ''यहाँ से हमारे जाने का एक ही उपाय है – वह है आधी रात का समय, जब वे लोग सो रहे होंगे। एक-दो दिनों में पूर्णिमा की रात आने वाली है। हमलोगों को उसका लाभ उठाना है। हम चाँदनी रात में बिना किसी अधिक कठिनाई के पहाड़ी मार्ग से नीचे जा सकते हैं।'' अपनी योजनानुसार, चाँदनी रात में जब गाँववाले गाढ़ी निद्रा में सोए हुए थे, तब वे दोनों संन्यासी दबे पाँव उस गाँव को छोड़कर चले गए और पुन: कभी वहाँ वापस नहीं आये।

मैंने यह घटना स्वामी प्रणवात्मानन्द जी महाराज से सुनी थी।

व्यावहारिक ज्ञान बनाम नैतिक कर्तव्य

जब मैं ब्रह्मचारी था, तब एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी

विश्ववेदानन्द जी (१९०६-१९७८) ने अपने हिमालय के परिव्राजक जीवन का अनुभव मुझे बताया था – "मैं एक पहाड़ी गाँव में तालाब के तट पर रहता था। ग्रामीणों का जीवन सरल, निष्कपट, सादगीपूर्ण था और शहरी संस्कृति से दूषित नहीं था। उनमें से अधिकांश कभी भी अपने गाँव से बाहर नहीं गये थे। खेती और पशु ही उनकी आजीविका थी। उनके गाँव में एक छोटा-सा मन्दिर था, जहाँ उनके सभी सामुदायिक कार्यक्रम होते थे। रात्रि-भोजन के बाद वे लोग मन्दिर में जाते तथा ढोल-मृदंग, झाँझ-करताल लेकर ईश्वर के नाम-गुणगान और भजन-कीर्तन में घंटों समय बिताते। केवल यही उनके मनोरंजन का साधन था।

एक दिन शाम को बहुत से ग्रामवासी मेरी कुटिया में आये। वे लोग बहुत ही उत्सुक दीख रहे थे। गाँव का मुखिया भी उन लोंगो के साथ था। उसने मुझे प्रणाम कर कहा, 'महाराज, चमत्कार हो गया ! हमारे तालाब में शेषनाग प्रकट हुए हैं। कृपया आकर उनका दर्शन कीजिए।'"

विश्ववेदानन्द महाराज हमें आगे सुनाते रहे, "तुम तो जानते हो कि हमारी पौराणिक कथाओं में नागराज वासुकि की कथा आती है। उन्हें शेषनाग भी कहते हैं। गाँववालों ने पौराणिक कहानियाँ सुनी थीं। उनमें से अधिकांश लोग उन कथाओं को सत्य मानते थे। कुछ अविश्वास और बहुत उत्सुकता से मैं उनलोंगो के साथ तालाब की ओर गया। कुछ दूर से मैंने तालाब में एक मुर्गा (Mud hen) को देखा। मुर्गा के शरीर का अधिकांश भाग जल में डुबा हुआ था, लेकिन पतली गर्दन के साथ उसका सिर बाहर था, जो सर्प के फन के समान दीख रहा था। मुर्गा की वह प्रजाति उस अंचल में दुर्लभ थी। वे प्राय: कम ऊँचाई वाले तालाब में या झील में दिखाई देते हैं। बालक जैसी सरलता से मुखिया ने उस मुर्गा को दिखाते हुए मुझसे कहा 'महाराज, क्या आप शेषनाग का फन देख रहे हैं? क्या यह चमत्कार नहीं है कि हमारे गाँव में शेषनाग प्रकट हुए हैं?' मैं उसकी भूल को सुधारना नहीं चाहता था। मैंने उसके विश्वास को बनाए रखा कि वास्तव में शेषनाग ही उनलोगों के सामने प्रकट हुए हैं।"

यह सुनने के बाद मैंने (लेखक) अपनी असहमति जताते हुए स्वामी विश्ववेदानन्द जी महाराज से कहा, "लेकिन, यह सही नहीं था। आपको उन लोंगो से सत्य कहना चाहिए था। आपको उन लोगों से यह कहना चाहिए था कि वे लोग जिसे शेषनाग कह रहे हैं, वह शेषनाग नहीं, बल्कि एक मुर्गा है।"

स्वामी विश्ववेदानन्द जी महाराज ने उत्तर दिया, "मैं उनलोगों के मन में सन्देह उत्पन्न नहीं करना चाहता था। वे लोग जिस परिवेश में रहते हैं, वहाँ देवी-देवता और पौराणिक चरित्र सभी सत्य होते हैं। यदि वे लोग किसी एक व्यक्ति या वस्तु में भी सन्देह करना आरम्भ कर दें, तो वे भी शहरवासियों के समान अज्ञेयवादी एवं अविश्वासी हो जाएँगे। मैं उनलोगों के बालसुलभ विश्वास को क्षति नहीं पहुँचाना चाहता था, क्योंकि केवल वैसा विश्वास ही उन्हें अन्तत: ईश्वर के समीप ले जायेगा।"

तब मैं महाराज की बातों से पूर्ण सहमत नहीं था, किन्तु अब इतने वर्षों के अनुभव से मैं समझ रहा हूँ कि वे सही थे और मैं गलत था। अपनी युवावस्था में यह मेरा भावशून्य नैतिक हठ ही था, जो उन वरिष्ठ संन्यासी के उपदेश को स्वीकार करने के मार्ग में बाधा बन रहा था – वैसा दुर्लभ उपदेश मानवता के प्रति सच्ची सहानुभूति से उत्पन्न होता है। **(क्रमश:)**

मन तू आनन्द में मग्न रह

महाज्ञानी तथा भक्त तुलसीदासजी कह गए हैं –

देह धरे को दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से मूरख भुगते रोय।।

अर्थात् देह धारण करने पर सभी को कष्ट-भोग करना ही होगा, परन्तु भेद इतना ही है कि ज्ञानी उस दुख को अवश्यम्भावी और अपरिहार्य जानकर ज्ञानपूर्वक स्थिर चित्त से भोगते हैं और मूर्ख-अज्ञानीजन इस बात को न समझकर रोते-गाते, हाय-हाय करते दुखी होते हैं।

स्वामी तुरीयानन्द

श्रीरामकृष्ण देव का यह वचन सर्वदा स्मरण रखना - "दुख जाने और शरीर जाने, पर मन तू आनन्द में मग्न रह।" ऐसा करने पर तुम्हें दुख-कष्ट मोहित नहीं कर सकेंगे।

– स्वामी तुरीयानन्द

साधक-जीवन कैसा हो? (१८)

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

शास्त्र कहता है कि इस देह की मृत्यु के साथ हमारा मन नहीं मरता है। जिस जन्म में हमें ईश्वर का साक्षात्कार होगा या ब्रह्म ज्ञान होगा, तभी ज्ञानाग्नि से हमारा व्यक्तित्व भस्म हो जायेगा। किन्तु उसके पहले चिताग्नि में यह शरीर भर जलेगा, मन नहीं। मन अग्नि से नहीं जलता। शरीर की तुलना में मन अति दीर्घजीवी है। अत: शरीर और मन को सँवारने का, शरीर और मन को स्वस्थ रखने का, जब प्रश्न आए, तो प्रधानता मन को स्वस्थ रखने की, सँवारने की देनी चाहिए। जब तक यह शरीर है, तब तक पहले मन को स्वस्थ्य रखने का प्रयास करें। इसका यह अर्थ नहीं कि शरीर की उपेक्षा कर दें। शरीर के लिए जितना आवश्यक है, उतना करें तथा सादा और सहज जीवन बितायें।

हमने समझ लिया कि शरीर की तुलना में मन नित्य है, किन्तु वस्तुत: मन भी अनित्य ही है। यह भी शाश्वत नहीं है। नित्य की धारणा से अनित्य बोध सहायक हो सकता है। दूसरी अत्यन्त आवश्यक बात है, साधक-जीवन में समय का महत्व। हमारे जीवन में अनित्य-बोध के साथ काल-बोध भी होना चाहिए। काल नित्य है। हमारे हिन्दू शास्त्रों में भगवान शंकर का एक नाम 'महाकाल' है। उज्जैन में महाकाल शिव का मंदिर है। महाकाल सर्वथा नित्य हैं। काल ईश्वर का ही एक नाम है। किन्तु मानव-जीवन का काल अनित्य है। हमारे अनित्य बोध का अभ्यास हमारे काल में ही है। केवल कालातीत की धारणा हमें नित्य चेतन बोध नहीं करा सकती। कालातीत नित्यता ही ईश्वर है, उसमें प्रतिष्ठित होने पर हम शाश्वत चेतन सत्ता का सदा बोध कर सकेंगे ।

व्यावहारिक दृष्टि से हम जब विचार करते हैं, तो सबसे पहले हमारा ध्यान समय की ओर जाता है। उदाहरणार्थ अभी १० बजकर २५ मिनट हुआ है। इस कल्प में कभी भी १३ मार्च को १० बजकर २५ मिनट दुबारा नहीं आ सकता है। मनुष्य के गणनात्मक काल के द्वारा हम महाकाल की धारणा नहीं कर सकते। हम अपने काल की गणना के लिये घड़ी रखते हैं। विभाजक काल अनित्य होता है। इस अनित्य काल के समाप्त होने के पूर्व हमें नित्य में प्रतिष्ठित होने का प्रयत्न करना चाहिए।

एकबार मैं एक कॉलेज में व्याख्यान देने गया था। वह टेक्नीकल कॉलेज था। वहाँ सब विज्ञान और इंजीनियरिंग पढ़ने वाले लड़के-लड़कियाँ थे। उनके गले जल्दी ये बात उतरती नहीं थी। किसी ने कहा – स्वामीजी आपका दर्शन ठीक है, किन्तु अभी हम युवक हैं, तकनीकि शिक्षासम्पन्न हैं, अभी तो हमारे जीवन का उद्देश्य है, खाओ, और मौज करो। वहाँ विषय था – जीवन का क्या प्रयोजन है? मैंने उनसे कहा कि देखो, तुम खाना-पीना तो कर सकोगे, किन्तु क्या सदैव प्रसन्न रह सकोगे? क्योंकि भोजन चाहे जितना भी सुस्वादु हो, एक समय नीरस हो जाता है। यह मौज-मजा भी एक समय नीरस हो जाता है। खैर, इस पर बहुत देर तक चर्चा हुई, उनके पास कोई उत्तर नहीं था। उनके सामने स्वामीजी, ठाकुर और दूसरे सन्तों की बातें रखी गयीं।

हम कालबोध पर विचार कर रहे थे। हम आध्यात्मिक जीवन आरम्भ करें। ईश्वर की परम कृपा से स्वामी यतीश्वरानन्दजी महाराज मेरे गुरु थे। मेरी मंत्र-दीक्षा यहीं नागपुर में हुई थी। इसलिए नागपुर मेरा गुरु-स्थान है। मेरे मन में यहाँ के प्रति बहुत आकर्षण है। मैं आपको एक घटना बताता हूँ। ५० साल पहले की बात है। मेरे एक गुरुभाई जो यूनान में रहते थे। अब वे हैं कि नहीं पता नहीं, क्योंकि बहुत दिनों से मेरा और उनका कोई संपर्क नहीं है। यतीश्वरानन्दजी महाराज वर्षों विदेशों में रहे। द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ। उसके एक दिन पहले जर्मनी से एक अंतिम जहाज अमेरिका के लिए निकला था, वे उसमें बैठकर अमेरिका चले गये। १५-१७ वर्षों तक विदेशों में रहकर भारत लौट आए तथा बैंगलोर आश्रम के प्रमुख के रूप में कार्य करने लगे। महाराज जब भारत आये, उसके लगभग एक-डेढ़ वर्ष बाद, यूनान का उनका एक शिष्य जॉन मेनेटा उनसे मिलने आया। उसने महाराज से कहा, मैं आपको यूरोप और अमेरिका के भक्तों की ओर से निमंत्रण देने आया हूँ। आप भले ही भारतवर्ष में रहें, लेकिन आपको साल में एक बार विदेश अवश्य आना

चाहिए। आप अमेरिका आयें और वहाँ से यूरोप आयें या यूरोप होकर अमेरिका जायें, हम सभी भक्त उसकी व्यवस्था करेंगे। मैं दूत होकर आपको न्यौता देने के लिए आया हूँ। महाराज हँसने लगे। उनके सेवक सोमनाथ महाराज थे, जो अब नहीं रहे, उन्होंने उन्हें बुलाकर कहा, यूरोपियन वस्त्र लाकर जॉन को दे दो। उन्होंने जॉन से कहा – मैं तो अब भारत में रहता हूँ, मुझे इन कपड़ों की आवश्यकता नहीं है। यहाँ तो हम ये गेरुआ वस्त्र पहनते हैं, तुम इन कपड़ों को ले जाओ। जॉन ने कहा, नहीं महाराज, ऐसा मत कहिये, आपको विदेश आना ही होगा, आपको इन कपड़ों की आवश्यकता होगी। तब महाराज ने कहा – नहीं तुम ले जाओ। जब उसने पुन: जोर दिया, तो महाराज ने गंभीर होकर उससे कहा – ''Look here my boy, my all karmas are over, now I live minute to minute'' – देखो, बेटा मेरे सभी कर्म समाप्त हो गये है। अब मैं क्षणों में जीता हूँ।'' यह है वर्तमान में, कालबोध में जीना। साधक या साधिका को ये कालबोध होना चाहिए। हम लोग क्षणों में नहीं जी सकते, वह ब्रह्मज्ञ पुरुषों के लिये है, पर प्रयत्नपूर्वक हम आज का जीवन जीने की चेष्टा कर सकते हैं। हमारे जीवन का प्रारम्भ कब होता है? जब हम सुबह सोकर उठते हैं। प्रात: जगने से लेकर रात के सोने जाने तक के समय का हमें सदुपयोग करना है।

आज हमारे एक ब्रह्मचारी ने मुझे पुस्तक दिखाई, जिसका नाम था सम्भवत: 'Live in Present'। उसने मुझसे कहा – मैं इसे नहीं समझ पा रहा हूँ, आप कृपया इसे पढ़कर मुझे समझा दीजिये। मैंने उसे पढ़ा और कहा हमारे ऋषियों ने एक शब्द में इस संसार को 'क्षणभंगुर' कहा है। यह संसार क्षणभंगुर है। इसलिए वर्तमान का पूरा-पूरा सदुपयोग कर लेना चाहिए।

यतीश्वरानन्दजी महाराज की पुस्तक 'ध्यान और आध्यात्मिक जीवन' और ठाकुर के प्रत्यक्ष शिष्यों के उपदेशों की पुस्तकों को आप पढ़ें और उन उपदेशों का जीवन में आचरण करने का प्रयत्न करें।

केवल अनित्य बोध की धारणा से निराशा हो सकती है, इसलिए अनित्य-बोध के साथ-साथ उस एक नित्य और शाश्वत वस्तु का भी चिन्तन करना चाहिए। यह नित्य वस्तु ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा, गॉड आदि अनेक नामों से सम्बोधित की जाती है। अत: अनित्यबोध के चिन्तन के साथ-साथ नित्य वस्तु के बोध का भी चिन्तन करना चाहिए। विदेशों में रहते समय पूज्यपाद स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज ने वहाँ के भक्तों से कहा था – 'Start your day with spritual breakfast' – अपना दिन आध्यात्मिक जलपान से प्रारम्भ करो।

प्रवचन - ६

वंदनीया माताओ एवं सुहृद भक्तवृन्द !

इस वर्ष के इस सत्र का यह अन्तिम व्याख्यान है। विषय है 'साधक का जीवन कैसा हो?' इस पर ५ व्याख्यान हो चुके हैं और ये छठवाँ व्याख्यान है। आप सबने धैर्यपूर्वक उन व्याख्यानों को सुना, इसके लिए अशेष धन्यवाद।

'साधक का जीवन कैसा हो?' यह विषय शाश्वत है। साधक का जीवन एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है। सत्र की समाप्ति के पश्चात ही साधना की प्रक्रिया प्रारम्भ होगी। व्याख्यान सुनकर साधना पूर्ण नहीं हो जाएगी, बल्कि वह प्रारम्भ होगी। हमें उस दृष्टि से यह सावधानी रखनी चाहिए। मैंने कदाचित प्रथम व्याख्यान में ही आपसे निवेदन किया गया था कि साधना सदैव उत्तम पुरुष में होती है। हमें यह देखना होगा कि मेरा साधक जीवन कैसा है और उसे कैसा होना चाहिए? हमारा वर्तमान जीवन साधना के अनुकूल है अथवा नहीं है? हम सब साधक-साधिकाएँ जो यहाँ उपस्थित हैं, सबके मन में यह इच्छा है कि हम साधना करें और उसी इच्छा से प्रेरित होकर हम सब यहाँ आए हुए हैं।

किसी भी उपलब्धि के लिये साधना करनी पड़ती है। एक विद्यार्थी पढ़ता है। उसे परीक्षा देनी है। परीक्षा की तैयारी, परीक्षा की पढ़ाई उसके लिये साधना है, जिस साधना के द्वारा परीक्षा में उसे यथासाध्य सफलतापूर्वक अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होना है। साधना साध्य नहीं है, किन्तु साध्य तक पहुँचने का मार्ग है। जैसे विद्यार्थी जब अध्ययन करता है, तो वह उसका लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य है परीक्षा में अच्छी तरह उत्तीर्ण होना। वैसे ही हमारे जीवन में भी आध्यात्मिक साधना का एक लक्ष्य है। स्वामी विवेकानन्द जी अपनी एक पुस्तक में कहते हैं – एक बार लक्ष्य निर्धारित कर लो और फिर चाहे उसे तुम भूल भी जाओ, किन्तु अपना सारा ध्यान, सारी शक्ति लक्ष्य की प्राप्ति के उपाय में लगाओ। **(क्रमश:)**

काशी के बनबाबा (६)

स्वामी अप्रमेयानन्द, रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

(प्रस्तुत निबन्ध का मूल बांगला से हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन साधना कुटीर, ओंकारेश्वर के स्वामी उरुक्रमानन्द जी ने किया है।)

दीन-दुखी लोगों के लिए महाराज का हृदय रोता था। विशेषकर संकटमोचन मन्दिर और दशाश्वमेध घाट के कुष्ठरोगी-नारायणों के लिए। प्रतिवर्ष स्वामी विवेकानन्द जी के जन्मदिवस के उपलक्ष्य में नारायण-पूजा के बाद महाराज की अनुप्रेरणा से ही संकटमोचन और दशाश्वमेध घाट के दरिद्र-नारायणों में खिचड़ी, तरकारी, मिठाई तथा खीर आदि का वितरण किया जाता था। वितरण के बाद सब विवरण सुनकर महाराज का मुखमण्डल आनन्द और तृप्ति से परिपूर्ण हो जाता था।

सन् १९९२ ई. में रामकृष्ण मठ-मिशन के द्वादश महाध्यक्ष परम पूजनीय स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज काशी सेवाश्रम आये थे। एक दिन सुबह लवेश्वर शिवमन्दिर के सामने दोनों की भेंट हुई। प्रेसिडेन्ट महाराज अपने सेवकों के साथ थे। मैं बनबाबा के साथ था। बनबाबा प्रेसिडेन्ट महाराज को देखकर प्रणाम करने को तत्पर हुए, किन्तु नीचे झुकने में असमर्थ होने पर उन्होंने प्रणाम की भंगिमा में अपना हाथ बढ़ा दिया। तब महाराज ने कहा, 'रहने दो बनबिहारी, तुम्हें प्रणाम करने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे हाथ के स्पर्श से कितने लोग स्वस्थ हो जाते हैं।'' यह कहते हुए उन्होंने पुन: कहा, ''बनबिहारी के हाथ के इस गुण से मैं भी एक बार स्वस्थ हो गया था। एक बार एक ऑपरेशन के बाद मेरा घाव किसी भी तरह से ठीक नहीं हो पा रहा था, तब मैं काशी आया और बनबिहारी ने रोज मेरी ड्रेसिंग कर मुझे ठीक कर दिया।''

बनबिहारी महाराज ने अपने देहत्याग के एक वर्ष पहले स्वयं ही अपना भण्डारा कर दिया था। उनकी इच्छानुसार बाबा विश्वनाथ, माँ अन्नपूर्णा, कालभैरव, केदारनाथ, बटुक भैरव और अद्वैत आश्रम में पृथक्-पृथक् विशेष पूजा करने के अनन्तर साधु-भण्डारा किया गया था। वे ह्वील चेयर पर बैठकर साधु-भण्डारा का दर्शन कर तृप्त हुए थे। समय के पूर्व वे प्रतिदिन ही नारायण सेवा करने जाते थे। इसके बाद एक दिन सुबह बाथरूम में गिर पड़े। शरीर पर कहीं भी कोई विशेष चोट नहीं लगी, फिर भी वे बहुत देर तक बैठ नहीं पाते थे। तब से उनका अस्पताल में जाना बन्द हो गया।

दूसरी बार ऑपरेशन के बाद जब कुछ दिन से वे सेवा करने जा नहीं पाते थे, तब एक दिन उन्होंने मुझसे कहा, ''गार्जियन, तुम अद्वैत आश्रम जाकर शंकर महाराज (स्वामी अपूर्वानन्दजी) से मेरा प्रणाम निवेदित कर उनसे कहना कि यदि वे दोपहर का ठाकुर का थोड़ा-सा प्रसाद मुझे दे देंगे, तो मैं धन्य हो जाऊँगा।'' मैंने भी आदेश का पालन किया। सुनकर अपूर्वानन्दजी ने कहा था, ''बनबिहारी के लिये तुम स्वयं आकर जैसी भी आवश्यकता हो, वैसा प्रसाद लेकर जाना।''

बनबाबा से मैंने इसका कारण पूछा था। महाराज ने कहा, ''सेवा न करते हुए सेवाश्रम का अन्न खाना उचित नहीं है। राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) ने यह बात कही थी, ऐसा मैंने सुना है।'' एक बार राजा महाराज यहाँ पर आये हुए थे। सेवाश्रम के सभी साधु-ब्रह्मचारियों की सेवा के बारे में उन्होंने ध्यान से सुना। एक महाराज का विशेष कुछ कार्य न था। इसीलिए उनसे कहा, ''इतनी कम सेवा देकर सेवाश्रम का अन्न खाना ठीक नहीं। तुम कुछ दिन ठाकुर का (वाराणसी अद्वैत आश्रण) प्रसाद ही लेना। बाद में सेवाश्रम का यदि कुछ दूसरा काम करना, तब यहाँ खाना।'' जब महाराज सप्ताह में चार दिन अद्वैत आश्रम का दोपहर का प्रसाद पाते थे, तब डॉक्टर महाराज उन्हें रामचारितमानस का पाठ सुनाते थे। अन्य दिन में दूसरी पुस्तकों पाठ होता था। एक दिन पाठ के बाद अमृतानन्दजी ने बनबाबा से प्रश्न किया, ''महाराज, काम विकार कैसे जाएगा?'' बनबाबा ने कहा, ''गुरुकृपा से मेरी रक्षा हुई। फिर भी शरीर-बोध रहने से ही काम रहेगा। *मोरबे साधु उड़बे छाई तबे साधुर गुण गाई* – अर्थात् साधु की चिता जल जाए, तभी उसके गुणों को गाना चाहिए। ८० वर्ष के होने पर भी अनेक लोगों को मैंने काम भाव से पीड़ित होते देखा है।'' डॉक्टर महाराज ने पुन: पूछा, 'क्या आपको कभी क्रोध आता है?'' बनबाबा ने कहा, ''आश्रम की कोई क्षति करता है अथवा कोई अनिष्ट करते देखकर बहुत क्रोध आता था। अब भी वैसा देखने पर क्रोध आ ही जाता है।''

हमने प्रत्यक्ष देखा था, जब कोई बच्चा आश्रम के पेड़-पौधों की पत्तियों को नष्ट करता, तो देखकर क्रोधित हो महाराज बरामदे से खड़े होकर धमकाते थे। जबकि वे चल भी नहीं पाते थे। संघरूपी ठाकुर के प्रति उनका गहन प्रेम था। बनबिहारी बाबा के जीवन की कुछ विशेष ध्यान

देने योग्य बातें थीं –

१. महाराज कभी भी किसी की आलोचना नहीं करते थे।

२. महाराज कभी भी कोई विशेष सुविधा नहीं लेते थे। काशी की प्रचण्ड गर्मी में जब सचिव महाराज कूलर लगाने के लिए उनसे कहते, तो बनबिहारी महाराज कहते, "यहाँ और भी बहुत-से वृद्ध साधु हैं। यदि सभी के कमरे में कूलर लगाया जाए, तब मेरे कमरे में भी लगाने में कोई आपत्ति नहीं।" बाद में वैसा ही हुआ। शीतकाल में हीटर के प्रयोग का प्रश्न ही नहीं उठता था, क्योंकि वे वर्षभर बाहर बरामदे में ही सोते थे।

३. छोटे-बड़े सभी साधु-ब्रह्मचारियों को वे भाई कहकर ही सम्बोधित करते। जब भी कोई उन्हें प्रणाम करता, तब उसका प्रणाम समाप्त न होने तक वे हाथ जोड़कर खड़े रहते।

४. कभी-भी किसी को कठोर शब्द नहीं बोलते थे।

५. दीर्घ काल तक खड़े-खड़े ड्रेसिंग करते रहने से वे घुटनों को मोड़ नहीं पाते थे, पर इसके लिए उन्हें कोई शिकायत भी नहीं थी।

महाराज का शरीर वैसे बहुत ही बलिष्ठ था। घुटने की पीड़ा को छोड़कर उन्हें विशेष कोई कष्ट नहीं था। किन्तु नारायण सेवा न करने का उन्हें बहुत दुख था। साधारणत: वे सदानन्द भाव से हँसमुख हो सबसे बातें करते थे, परन्तु कभी-कभी न जाने कहाँ आत्मभाव में लीन हो जाते थे। ऐसा लगता था कि माँ की गोद में चिरशान्ति के लिए तैयार हो रहे हैं। बाहर से देखने पर कुछ भी समझ पाना कठिन था। इस समय भी खाना-पीना ठीक ही चल रहा था। ८-१० रसगुल्ले एक साथ ही खाकर पचा सकते थे।

सन् १९९६ के १५ जून, शनिवार को सुबह नित्यकर्म समाप्त कर व्हील चेयर पर बैठकर लवेश्वर शिव और ठाकुर मन्दिर के दर्शन कर, नाश्ता करने के पश्चात् महाराज ने कहा, "जपमाला मुझे देकर तुम अपनी सेवा करने जाओ।" मैं भी उन्हें सुलाकर गंगाजल उनके हाथ में देकर फिर जपमाला दे दी। सन्तोष नाम का एक लड़का सदा महाराज के पास रहता था। उसे महाराज के पास रखकर मैं नारायण सेवा हेतु चला गया। प्राय: १० मिनट के बाद सन्तोष ने फोन करके मुझसे कहा, "आप शीघ्र चले आइये, महाराज कैसा कर रहे हैं।" दो मिनट में ही आकर देखा, तो नाड़ी का पता नही चला। तुरन्त ही डॉक्टर महाराज को बुलाया। वे भी दौड़कर आ गये। देखते ही बोले, "अब कुछ भी किया नहीं जा सकता।" हमारे सामने ही महाराज दो-तीन बार गम्भीर नि:श्वास लेकर परम शान्ति से अपने मुक्तानन्द नाम को सार्थक करते हुए स्वस्वरूप में लीन हो गये। हम लोग तब 'हरि ॐ रामकृष्ण' नाम का उच्चारण करने लगे तथा ९३ वर्ष का पंचभूत वाला पार्थिव शरीर पड़ा रह गया। तब घड़ी का काँटा ८.४० मिनट कह रहा था। स्थानीय बेतार और दूरदर्शन के माध्यम से कुछ मुहूर्त में ही महाराज के देहत्याग की खबर चारों ओर फैल गयी। दर्शन की सुविधा के लिए उनके पार्थिव देह को बाहर लाकर बर्फ के ऊपर सुला दिया गया। साधु-ब्रह्मचारी एक स्वर से वैदिक मन्त्रोच्चारण और गीतापाठ करने लगे। जून माह की तीव्र गर्मी की उपेक्षा करते हुए धीरे-धीरे साधारण मेहतर से लेकर डॉक्टर तक, सभी कर्मचारियों और भक्तों ने आकर उन्हें अन्तिम प्रणाम किया और श्रद्धा निवेदन कर व्यथित मन से अपने-अपने घरों को लौट गए।

संध्या ५ बजे महाराज के पार्थिव शरीर की शोभायात्रा निकाली गई और दशाश्वमेध घाट पर जाकर एक बड़ी नौका पर रखा गया। प्राय: ५० साधु-ब्रह्मचारी एक स्वर से शिवमहिम्नस्तोत्र का पाठ करने लगे। अन्य दो बड़ी नौकाओं में, एक में पुरुष-भक्त थे तथा दूसरी में महिला-भक्त थीं। मणिकर्णिका और सिंधिया घाट के बीचो-बीच नौका से पार्थिव शरीर को उतारकर पंचामृत द्वारा स्नान शुरू हुआ। इधर साधु-ब्रह्मचारी पुरुषसूक्त का पाठ कर रहे थे। स्नान के बाद महाराज को गैरिकवस्त्रावृत कर विभूतिभूषित किया गया, जिससे वे दिव्य शोभायमान लग रहे थे। शरीर को पुन: नौका पर रखकर मणिकर्णिका में ब्रह्मनाल के सामने गंगागर्भ में 'हरि ॐ रामकृष्ण' मन्त्र द्वारा महाराज की नश्वर देह को विसर्जित किया गया। तब गोधूलि बेला का समय था। एक स्वर से गीत आरम्भ हुआ – *ओई जे देखा जाए आनन्दधाम* । वापस आते समय हमने देखा प्राय: सहस्र दीपों की एक शृंखला माँ गंगा को घेरे हुए उत्तराभिमुख होकर आ रही है। वह एक अपूर्व दृश्य था !

बनबाबा आज हमारे बीच स्थूल शरीर में विद्यमान तो नहीं हैं, किन्तु वे रख गये हमारे सामने एक महान आत्मनिर्भर जीवन। उन्हें कभी भी किसी वस्तु की इच्छा नहीं थी। वेशभूषा के प्रति वे उदासीन रहते थे। वे हमारे सामने अपना सदा अन्तर्मुखी, त्याग-वैराग्यमण्डित अनुपम जीवन रख गये। संघरूपी श्रीरामकृष्ण की सेवा में समर्पित था उनका यह एक दिव्य जीवन। **समाप्त**

हिमालय की गोद में स्वामी विवेकानन्द

मोहन सिंह मनराल, अलमोड़ा

हिमालय प्रकृति का वरदान है। गिरिराज हिमालय के बारे में कितना सुन्दर कहा गया है –

यह है भारत का शुभ्र मुकुट,
यह है भारत का उच्च भाल।
सामने अचल जो खड़ा हुआ,
हिमगिरि विशाल गिरिवर विशाल।।

आदिकवि कालिदास ने इसे पूर्व से पश्चिम समुद्र तक विस्तृत पृथ्वी मापने का मानदण्ड कहा। इन उक्तियों से हिमालय को प्रकृति का अमूल्य वरदान कहा जा सकता है, जो प्राचीन टैथिज सागर से उठकर भारत भारती के शीर्ष पर न केवल शुभ्र मुकुट की तरह विराजित है, वरन् उसे नवजीवन प्रदान करता है। भारत की सनातन संस्कृति के उद्‌गम व विकास की भूमि के रूप में यह अन्य संस्कृतियों के मूल्यांकन का आधार भी बना हुआ है। इसीलिये हर युग में इसने अपनी गोद में अवतारों, भक्तों, योगियों, साधकों, चिन्तकों, कवियों और प्रकृतिप्रेमियों को आकर्षित किया और आश्रय भी दिया। ऋषि-मुनियों को आत्मा में विचरण कर यहाँ धार्मिक और दार्शनिक सत्यों के अनुसंधान का अवसर मिला। यह महायोगी शिव की अखण्ड समाधि स्थली है। इसकी गौरव गाथा का न आदि है, न अन्त। इसकी परिणति है इसके प्रति उमड़ता प्रेम और आकषर्ण, जो कम होने का नाम ही नहीं लेता है, वरन् बढ़ता ही जाता है। ऐसा ही प्रेम स्वामी विवेकानन्द के हृदय में इस हिमालय के लिये था, जिसका उल्लेख वे बार-बार अपने पत्रों और व्याख्यानों में करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द का हिमालय-प्रेम मई १८९४ को प्रो. राइट को लिखे पत्र में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, ''मैं कभी मिशनरी नहीं रहा और न कभी बनूँगा। मेरा स्थान तो हिमालय में है।'' वे २६ जुलाई १८९४ हेल बहनों को लिखते हैं, ''मैं वहाँ एक हिमालय बनाने जा रहा हूँ।'' शरतचन्द्र को लिखते हैं, ''मैं हिमालय की गुफा में समाधिमग्न होकर भी बैठ सकता हूँ।'' १० जुलाई, १८९७ को अलमोड़ा से कु. मैक्लाउड को लिखते हैं, ''व्याख्यानबाजी और वक्तृता से परेशान होकर मैंने हिमालय का आश्रय लिया है।'' २२ मार्च, १९०० को कु. मेरी हेल को लिखते हैं, ''जब श्रीमती सेवियर का उनके हिमालय स्थित आवास से पत्र मिलता है, तब मेरी हिमालय में उड़ जाने की इच्छा होने लगती है।'' १७ जून, १९०० को वे लिखते हैं, ''मुझमें इतना आशावाद आ गया है कि यदि मेरे पंख होते, तो मैं हिमालय उड़ जाता।''

इन पत्रों के उन अंशों को पढ़कर हृदय रोमांचित हो उठता है, जिनमें वे लिख रहे हैं, यदि मेरे पंख होते, तो मैं हिमालय उड़ जाता तथा मेरा स्थान तो हिमालय में है। एक ओर कवित्व दूसरी ओर गूढ़ सत्य। हिमालय के प्रति स्वामीजी का यह प्रेम उनकी हिमालय के प्रति अगाध निष्ठा को दिखाता है। मानो कोई साधक अपने हृदयधन परमात्मा से मिलने के लिये व्याकुल हो। इस प्रेम की पृष्ठभूमि में कुछ कारणों का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रथम, स्वामीजी का जन्म शिव अंश से हुआ था और हिमालय शिव की साधना और माँ पार्वती की लीला-भूमि है। अत: उनका यह आकर्षण स्वाभाविक माना जा सकता है। द्वितीय, वे नर-ऋषि होकर जग में आये और उनकी हमेशा यह इच्छा रही कि वे शुकदेव की भाँति समाधिस्थ रहें। इसके लिए हिमालय से अधिक उपयुक्त स्थल और कौन हो सकता है। तृतीय, पर्वतों के चिरशान्त सुरम्य शुद्ध वातावरण से निकलने वाली सकारात्मक ऊर्जा शुद्ध अन्त:करण में आध्यात्मिक सत्यों के अन्वेषण का मार्ग प्रशस्त करती है, ऐसा माना जाता है। कारण जो भी हो, इतना निश्चित है कि सत्यान्वेषण, ध्यान-धारणा, शक्ति-संचय और स्वास्थ्य-लाभ के उद्देश्य से वे अपने प्रिय हिमालय की गोद में आकर शान्तिप्राप्ति हेतु व्यग्र रहे। उन्होंने प्रमदादास मित्र से इसे व्यक्त करते हुए कहा भी था, ''अब की बार जब मैं हिमालय से लौटूँगा, तो समाज के ऊपर एक बम की भाँति फट पड़ूँगा।''

दूसरा पहलू था, अपने व्याख्यानों में हिमालय के वर्णन में वे कहते हैं, मेरी इच्छा है कि मैं अपने जीवन के शेष दिन इसी गिरिराज पर कहीं व्यतीत कर दूँ, जहाँ अनेक ऋषि रह चुके हैं, जहाँ दर्शन का जन्म हुआ था। अलमोड़ा अभिनन्दन के उत्तर में १८९७ में उन्होंने अलमोड़ा बाजार के रघुनाथ मंदिर के पास जो व्याख्यान दिया था, उसमें उनका हिमालय प्रेम छलक पड़ा था। उन्होंने कहा था, "यह स्थान हमारे पूर्वजों का स्वप्न देश है जिसमें भारत जननी श्रीपार्वतीजी ने जन्म लिया था। यह वही पवित्र स्थान है, जहाँ भारतवर्ष का प्रत्येक यथार्थ सत्य-पिपासु अपने जीवन काल के अंतिम दिन व्यतीत करना चाहता है। यह वही स्थान है, जहाँ मैं बचपन से ही अपना जीवन व्यतीत करने की सोच रहा हूँ, गिरिराज हिमालय वैराग्य और त्याग के प्रतीक हैं, यदि यह हिमालय धार्मिक भारत के इतिहास से पृथक कर दिया जाय, तो शेष बहुत कम रह जायेगा।" (वि०सा० ५/२४३) अपनी इसी अवधारणा से उन्होंने हिमालय क्षेत्र में मायावती में एक केन्द्र की स्थापना की, जिसे अद्वैत ज्ञान की साधना हेतु समर्पित किया और ध्यान-धारणा को उच्च प्राथमिकता दिलाई, जो हिमालय की सर्वोत्तम विशिष्टता है।

वे 'हमारा प्रस्तुत कार्य' नामक अपने व्याख्यान में कहते हैं, "भारतीय आर्यों की उत्तरी सीमा हिमालय की उन बर्फीली चोटियों से घिरी हुई है, जिनके तल में समभूमि पर समुद्र की स्वच्छतोया सरिताएँ हिलोरें मार रही हैं। इन सब मनोरम दृश्यों को देखकर आर्यों का मन सहज ही अन्तर्मुख हो उठा। वे अन्तस्तत्त्व के अनुसंधान में लग गये, चित्त-विश्लेषण उनका मुख्य ध्येय हो गया।"

हमने देखा किस प्रकार हिमालय स्वामीजी के चित्त को विमुग्ध किए हुए था। अत: वे कैसे इससे विलग रहते। वे हिमालय की ओर दौड़े। उन्होंने अपनी परिव्राजक यात्रा का श्रीगणेश हिमालय से किया। इसका आरम्भ १८९० ई. से होता है, जब वे अपने गुरुभाई अखण्डानन्दजी के साथ उत्तराखण्ड हिमालय की पहली यात्रा पर ध्यान-धारणा, शक्ति संचयन के उद्देश्य से आये थे। हिमालय की पावन गोद में आते ही उन्हें अद्भुत अनुभूतियाँ हुईं। उनका ऋषित्व जग गया। अब हम उनकी इन्हीं यात्राओं के संक्षिप्त वर्णन की ओर अग्रसर होंगे।

स्वामी विवेकानन्द हिमालय की गोद में सन् १८९० ई. में पधारे थे। आध्यात्मिक और प्राकृतिक समृद्धि से भरपूर, गंगोत्री, यमुनोत्री, बद्री, केदार चार पावन धामों को अंक में छिपाए उत्तराखण्ड हिमालय किसी के आगमन में प्रतीक्षारत था। १८९० का जुलाई माह दो अज्ञात संन्यासी तराई-भाबर की उमस भरी गर्मी को चीरते बढ़े चले आ रहे थे, उस शीतल नीरवता की खोज में जहाँ शान्ति, आनन्द, मौन और पवित्रता हो, जहाँ पग-पग पर कोमलता-कठोरता का संगम हो। हिमालय से अन्यत्र ऐसा स्थान भला दूसरा कहाँ हो सकता था। काठगोदाम से नैनीताल की ओर शिवालिक पहाड़ियों के दुर्गम वन प्रदेश को पदावनत करते स्वामी विवेकानन्द और उनके गुरुभाई स्वामी अखण्डानन्द नैनीताल पहुँचे। मार्ग की थकावट हिमालय और सुन्दर सरोवर के दर्शन से दूर हो गई। शीतल पवन ने उनके मन को स्फूर्ति व उमंग से भर दिया। श्रीरामप्रसन्न भट्टाचार्य के आतिथ्य में छह दिन बिताकर दोनों ने अलमोड़ा के लिए प्रस्थान किया। जंगल के बीच से गुजरते हुए स्वामीजी में भावान्तर होता गया, वे आत्म-निमग्न, मृदु हास्य मुद्रा में दिखे। वे तीन दिन बाद कोसी व सरोता नदी के तट पर स्थित एक अति रमणीय स्थान काकड़ीघाट पहुँचे, जहाँ पहुँचते ही स्वामीजी ने कहा, यह स्थान ध्यान के लिए उपयुक्त है। हो भी क्यों नहीं, यह यहाँ के प्रसिद्ध सन्त सोमवारी महाराज की साधना-स्थली थी। यहाँ आकर स्वामीजी एक बृहत् पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हो गए। लम्बी प्रतीक्षा के बाद उन्होंने अखण्डानन्दजी से कहा कि उनके जीवन की एक समस्या का समाधान हो गया। समष्टि और व्यष्टि दोनों एक ही नियम से परिचालित होते हैं, यह उन्हें ज्ञात हो गया। विश्व-ब्रह्माण्ड में जो कुछ है, वह छोटे से अणु में है। प्रत्येक परमाणु में सम्पूर्ण विश्व निहित है। विश्व-ब्रह्माण्ड और अणु-ब्रह्माण्ड की एकता को हम भले ही न समझ सकें, किन्तु ईशावास्योपनिषद का प्रथम मन्त्र स्वामीजी की इस अनुभूति की उद्घोषणा अवश्य करता है, जिसमें कहा गया है, इस अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ जड़-चेतनमय जगत है, यह सभी ईश्वर से व्याप्त है। क्या स्वामीजी ने इसी का अनुभव किया?

यहाँ से पहाड़ी चढ़कर थके-माँदे, भूखे-प्यासे स्वामीजी अलमोड़ा के निकट करबला से लगे कब्रिस्तान के पास अर्धमूर्च्छित जैसे पहुँचे। वहाँ पास ही रहनेवाले एक मुस्लिम भाई जुल्फिकार अली ने ककड़ी खिलाकर उनके प्राण

बचाये। स्वामीजी के द्वारा ककड़ी माँगने पर वह संकोच में पड़ गया था, तब स्वामीजी ने कहा था, क्या हम भाई नहीं हैं? स्वामीजी के ये शब्द प्रेम-भाईचारे से ओतप्रोत थे, जो हृदय के अन्तस्तल से निकले थे। काकड़ीघाट की अनुभूति के तुरन्त बाद स्वामीजी के ये शब्द मानवता के उस सूत्र को जन-जन से जोड़ते हैं। उन्होंने संन्यास के आदर्श और अपनी मुक्ति को अपनी इस अनुभूति से जोड़कर मानवता को प्रेम और बन्धुत्व का संदेश दिया, जो अद्‌भुत है।

अलमोड़ा में वे लाला बद्रीशाह के अतिथि हुए, जिनसे अखंडानन्दजी का पहले परिचय हो चुका था। बद्रीशाह के बारे में स्वामीजी ने कहा था, ऐसा भक्त संसार में विरल है। स्वामीजी इस यात्रा के दौरान ध्यान-धारणा में निमग्न निर्जन स्थान की खोज में आस-पास की पहाड़ियों में जाने लगे। वे कसारदेवी की पहाड़ी की गुफा में साधना में निमग्न हुए, जो शहर से उत्तर दिशा की ओर है, जहाँ से हिमालय का भव्य दृश्य दिखता है। स्वामीजी का हिमालय प्रेम और अन्तर्मुखता उन्हें हिमालय के वनारण्य में खींच कर लायी थी, किन्तु उनका संकल्प, उनके गुरुदेव के द्वारा सौंपा गया दायित्व उन्हें पुकार रहा था, जो कार्य जनारण्य में होना था। श्रीरामकृष्ण देव चाहते थे कि स्वामीजी वटवृक्ष के समान बनकर सबको छाया प्रदान करें। एक ऐसे सेतु बनें, जिससे लोग पार जा सकें। श्रीरामकृष्ण की करुणा मानो वह जलधारा थी, जो विशाल हिमराशि से नि:सृत गंगा की भाँति जीवों को प्राणवन्त कर रही हो। प्रश्न था, भगीरथ कौन बने? इसके लिए स्वामीजी का चयन हुआ था। तभी उन्होंने कोयले से दीवार पर लिखा था, 'नरेन्द्र शिक्षा देगा'। श्रीरामकृष्ण भाव थे, तो स्वामीजी को उसका मुख होना था। इसलिए स्वामीजी को अपने संकल्प से विरत होना पड़ा और वे वापस जनारण्य में लौट आये।

अलमोड़ा आने पर उन्हें अपनी बहन की आत्महत्या का दुखद समाचार मिला, जिसने उनके करुणार्द्र हृदय को विदीर्ण कर दिया। वे इसके प्रतिकार के लिए दृढ़ संकल्प लिए आगे बढ़ गये। आगे उन्होंने कहा, पक्षी एक पंख से उड़ नहीं सकता, नारियों का उत्थान हुए बिना भारतमाता नहीं जागेगी। उन्होंने पुरुषप्रधान समाज को फटकारते हुए कहा, तुम उनके (नारियों) बारे में बोलने वाले कौन हो? उन्हें शिक्षित करो, वे स्वयं अपना मार्ग निकाल लेंगी। नारी-शिक्षा और मठ की उन्होंने पहली आवश्यकता बतायी और अपनी शिष्या निवेदिता को भारत लाकर यह कार्य सौंपा। उन्होंने एक दीप जलाया, जो आज सैकड़ों में बदल गया। युग बदला। नारियाँ हर क्षेत्र में उड़ान भर रही हैं। यह कार्य चलता रहेगा। इस प्रकार इस यात्रा में जहाँ एक ओर गहन अनुभूति से मानव-प्रेम, भाईचारे का संदेश निकला, वहीं दूसरी ओर नारी-जागरण का संकल्प उठा। यह सब हिमालय के इस सुरम्य प्रदेश में हुआ।

५ सितम्बर को स्वामीजी बद्रीनाथ की ओर चल पड़े, पर मार्ग बन्द होने के कारण अलकनन्दा के तट पर तपस्यारत हो गए। आगे वे देहरादून और ऋषिकेश में अपने गुरुभाई के साथ लगभग एक माह तक तपस्या करते रहे। ऋषिकेश में गंगा के पावन तट पर उन्हें गहन समाधि की अनुभूति हुई। हिमालय की प्रथम यात्रा यहीं समाप्त हुई, जो ध्यान-धारणा, त्याग-तपस्या और शक्तिसंचय को समर्पित थी। इसी अनुभूति की गूँज आगे चलकर होनी थी और वास्तव में बम की तरह फट पड़ना था, जो पश्चिम की धरती पर फटा और समय की धारा बदल गई। एक नए धर्म, मानव-धर्म की सृष्टि हुई, जो अपने में सबको समाहित कर ले। स्वामीजी ने हिमालय का यही संदेश विश्व को दिया। गुफाओं में छिपे वेदान्त को जन-जन की सम्पत्ति बनाने का युगान्तरकारी कार्य किया और उन्होंने कहा कि वे सदियों तक के लिए कार्य कर गये हैं।

लगभग ४ वर्ष तक पश्चिम की धरती पर ज्ञान-गंगा प्रवाहित करने के बाद वे अपनी पवित्र मातृभूमि लौटे और जन जागरण के साथ पुन: हिमालय की गोद में विश्राम के लिए उत्तराखण्ड की दूसरी और तीसरी यात्रा पर आए। अमरनाथ की गुफा के दर्शन कर शिव से इच्छामृत्यु का वरदान पाया। दार्जिलिंग हिमालय में स्वस्थ हुए। अब हम संक्षेप में उनकी इन यात्राओं पर चर्चा करेंगे और देखेंगे कि विश्व विजयी होने के बाद, हिमालय के इन प्रदेशों में इस बार उनका क्या लक्ष्य है?

शिकागो धर्म-महासभा के मंच से ११ सितम्बर, १८९३ को सनातन धर्म-ध्वजा फहराने के बाद स्वामी विवेकानन्द लगभग चार वर्ष तक पश्चिम की धरती पर धर्म-प्रचार करते रहे। उन्होंने वहाँ धर्मसमन्वय, धार्मिक-सहिष्णुता और महान उदार भारतीय संस्कृति का बीज बोया और उस साहित्य को एक अनमोल धरोहर के रूप में मानव को प्रदान किया, जो उसे युगों तक प्रकाश देता रहेगा। कठिन परिश्रम और महान

त्याग से उन्होंने यह कार्य किया, जिसके लिये वे हिमालय के दिव्य परिवेश को छोड़कर आये थे। किन्तु इस पूरे प्रचार कार्य के दौरान एक दिन के लिए भी वे न तो अपने प्रिय भारत और न हिमालय को भूल पाये थे, वरन् वे उसके और अधिक निकट होते गये। भारत उनके लिये तीर्थ बन गया और हिमालय ऐसा मातृस्थल, जिसकी गोद में वे अपने आपको भूल जाते थे।

सन् १८९६ के अन्त में उनके भारत लौटने का अवसर आया, किन्तु इससे पूर्व जुलाई माह में वे यूरोप आल्पस पर्वत पहुँचे तथा वहाँ से हिमालय में मठ बनाने की रूपरेखा तैयार करने लगे। २१ नवम्बर, १८९६ के पत्र में वे अलमोड़ा के लाला बद्रीशाह को लिखते हैं – ''प्रिय लालाजी, ७ जनवरी तक मैं मद्रास पहुँचूँगा। कुछ दिन समतल क्षेत्र में रहने के बाद मेरी अलमोड़ा जाने की इच्छा है। मेरे तीन अंग्रेज मित्र हैं, उनमें दो सेवियर दम्पति अलमोड़ा में निवास करेंगे, वे मेरे शिष्य हैं एवं मेरी ओर से हिमालय में एक आश्रम बनवायेंगे।''

सन् १८९७ के प्रारम्भ में वे भारत वापस आये। उनका सर्वत्र भव्य स्वागत हुआ। उन्होंने अपने स्वागत में पढ़े गये सम्मानपत्रों के उत्तर में व्याख्यान दिये। उसके बाद वे अपने श्रीगुरुदेव के मठ की स्थापना, भारत के नव-जागरण और सेवा-कार्यों में जुट गये। दिन-रात अथक परिश्रम से उनका स्वास्थ्य टूटता गया और उन्होंने विश्राम, स्वास्थ्य-प्राप्ति तथा शक्ति-संचय हेतु पुन: अपने सबसे प्रिय हिमालय की ओर प्रस्थान किया । सर्वप्रथम मार्च में वे दार्जिलिंग गये, किन्तु कलकत्ता में प्लेग फैलने के कारण शीघ्र लौट आये। इसके बाद मई-जून में उन्होंने अलमोड़ा जाने का निश्चय किया। ६ मई, १८९७ को वे कलकत्ता से चलकर ११ मई को अलमोड़ा पहुँचे। लेकिन इस बार अज्ञात संन्यासी के रूप में नहीं, वरन् विश्वविजयी विवेकानन्द के रूप में उनका आगमन हो रहा था, इसलिए उनके आने से पूर्व ही उनकी प्रसिद्धि अलमोड़ा पहुँच गई थी। अपार जनसमूह उनके स्वागत के लिये पहले से खड़ा था। इस दूसरे प्रवास में उन्होंने ८१ दिन अलमोड़ा तथा उसके आसपास के स्थलों में निवास किया। यहाँ उन्होंने विश्राम किया, स्वस्थ हुए, अनमोल पत्र लिखे, व्याख्यान दिये और इस प्राचीन सांस्कृतिक नगरी को अपनी चरणरज से सदा के लिये पवित्र किया। अब हम उनके इस प्रवास-विश्राम की चर्चा करेंगे।

हिमालय की गोद अलमोड़ा में दूसरी बार स्वामीजी

हिमालय की गोद में जब स्वामीजी ११ मई, १८९७ ई. को दूसरी बार अलमोड़ा में पधारे, तो अलमोड़ा से कुछ दूर पहले लोधिया नामक स्थान पर स्थानीय जनमानस ने उनका स्वागत किया। उन्हें घोड़े पर बैठाकर नगर लाया गया। तुमुल हर्षध्वनि के साथ मार्ग में बिछाए गये कालीनों से होते हुए उन्होंने नगर में प्रवेश किया। उन पर पुष्प व अक्षत बरसाये गये। उस भीड़ के प्रत्यक्ष द्रष्टा मोहनलाल शाह अपनी स्मृति कथा में लिखते हैं – ''स्वामीजी के आगमन का संवाद पाकर बद्रीशाह के छोटे भाई और मैं दौड़कर अलमोड़ा से डेढ़ मील दूर चले गये थे। पलटन बाजार से ही लोगों की भीड़ शुरु हो गयी थी। सभी लोग फूलमाला इत्यादि लेकर दौड़ रहे थे। रास्ते के दोनों ओर से लोग फूल-अक्षत की वर्षा कर रहे थे। अलमोड़ा के पास लोधिया नामक स्थान में नागरिकों का विराट समुदाय उनकी प्रतीक्षा कर रहा था, जिसके अनुरोध पर स्वामीजी ने एक सुसज्जित घोड़े पर सवार होकर शोभायात्रा के आगे-आगे चलते हुए नगर में प्रवेश किया। स्वामीजी जब वहाँ से जा रहे थे, तब हजारों हिन्दू-नारियाँ अपने मकान की छतों और खिड़कियों से उन पर फूल और अक्षत बरसा रही थीं।''

यह ठीक वैसा ही दृश्य था, जब श्रीराम ने किसी अजेय असुर का वध किया, तो आकाश में खड़े होकर देवताओं ने पुष्प-वर्षा की। स्वामीजी ने भी कुछ ऐसा ही अलौकिक कार्य किया था। उन्होंने अजेय माने जानेवाले पश्चिमी भोगवाद पर अपनी पवित्रता और आध्यात्मिकता से विजय पाई थी, जिसने समय की धारा को मोड़ दिया। इस घटना के बाद वे युगनायक और युवानायक के रूप में विश्वमंच पर उदित हुए। स्वामीजी के प्रति जनमानस के प्रेम, श्रद्धा और भक्ति के उमड़ते भावों को इसी माटी के मूर्धन्य कवि सुमित्रानन्दन पंत ने कुछ इस प्रकार काव्यरस में डुबाकर प्रस्तुत किया था –

''माँ अलमोड़ा में आये थे जब राजर्षि विवेकानन्द
तब मग में मखमल बिछवाये दीपावली की विपुल अमंद
बिना पांवड़े पथ में क्या वे जननी नहीं चल सकते हैं?
दीपावली क्यों की? क्या वे माँ मन्द दृष्टि कुछ रखते हैं?
कृष्णे, स्वामीजी तो दुर्गम मग में चलते हैं निर्भय
दिव्य दृष्टि है, कितने ही पथ पार चुके कंटकमय
वह मखमल तो भक्ति-भाव के थे फैले जनता के मन के

स्वामीजी तो प्रभावान हैं, वे प्रदीप थे पूजन के।''

स्वामीजी के सम्मान में रघुनाथ मंदिर के पास बाजार में एक सभा हुई, जहाँ ५ हजार लोगों को सम्बोधित करते हुए स्वामीजी ने हिमालय के प्रति अपने हृदय में छिपे प्रेम, श्रद्धा और सम्मान को प्रकट करते हुए कहा, ''यह स्थान हमारे पूर्वजों का स्वप्नदेश है, जहाँ भारतजननी श्रीपार्वतीजी ने जन्म लिया था। यह वही स्थान है, जहाँ मैं बचपन से ही अपना जीवन व्यतीत करने की सोच रहा हूँ। मेरी यही इच्छा है कि मैं अपने जीवन के शेष दिन इसी गिरिराज में कहीं व्यतीत कर दूँ, जहाँ अनेक ऋषि रह चुके हैं, जहाँ दर्शन का जन्म हुआ था।'' हिमालय के माहात्म्य को व्यक्त करते हुए उन्होंने आगे कहा, ''गिरिराज हिमालय वैराग्य और त्याग के प्रतीक हैं तथा वह सर्वोच्च शिक्षा, जो हम मानवता को सदा देते रहेंगे, त्याग ही है। यदि यह हिमालय धार्मिक भारत के इतिहास से पृथक कर दिया जाय, तो शेष बहुत कम रह जायेगा। अतएव यहीं पर एक केन्द्र होना चाहिए, जो कर्मप्रधान न हो वरन् शान्ति का हो, ध्यान-धारणा का हो और मुझे पूर्ण आशा है कि एक-न-एक दिन ऐसा अवश्य होगा।'' अलमोड़ा जैसे सुरम्य प्राकृतिक स्थल व नम जलवायु में स्वामीजी के स्वास्थ्य में सुधार होने लगा। उनकी अँग्रेज शिष्या कु. मूलर ने उनके भोजन का दायित्व सँभाला। किन्तु उनका ध्यानोन्मुखी मन मानो नगर के इस वातावरण में तृप्त नहीं हो पा रहा था। वे अधिक निर्जन व एकांत की खोज में थे। शीघ्र ही उन्होंने ऐसा स्थल खोज लिया, जो अलमोड़ा से २० मील से अधिक दूर अलमोड़ा-बागेश्वर मार्ग पर था। इस स्थान का नाम देउलधार था, जहाँ से हिमालय सीधा खड़ा दिखाई देता था।

देउलधार स्टेट में स्वामीजी का एकान्तवास

देउलधार में स्वामीजी ने अपने इस अलमोड़ा प्रवास के ४७ दिन बिताये। उनके जीवन की यह अवधि काफी बड़ी कही जा सकती है, क्योंकि उनके लिये विश्राम जैसी वस्तु थी ही नहीं। वे स्वयं १५ जून को एक पत्र में लिखते हैं, ''मैं शीघ्र नीचे (मैदानी क्षेत्र में) जानेवाला हूँ। मैं योद्धा हूँ और मैं रणक्षेत्र में मरूँगा। क्या मुझे यहाँ पर्दाशीन स्त्रियों की तरह बैठना शोभा देता है।''

देउलधार अलमोड़ा-बागेश्वर मार्ग पर लगभग ७५ कि. मी. दूर एक उपेक्षित भूखण्ड है, जहाँ पहुँचने के तीन रास्ते हैं। एक पौड़ीधार और दूसरा खांकर से। इन दोनों मार्गों से सड़क छोड़कर इस स्थान की दूरी लगभग ८ कि०मी० पड़ती है। एक कच्चा सड़क-मार्ग, तो दूसरा पहाड़ी रास्तों का पैदल मार्ग। तीसरा मार्ग इसी सड़क पर ६० कि. मी. दूरी पर स्थित काफलीगैर जहाँ अलमोड़ा मैग्नेसाइट सिमेन्ट कारखाना (झिरौली) स्थित है, से जाता है। इस मार्ग पर लगभग ३ कि. मी. सड़क से पैदल चलने के बाद २ कि. मी. सीधी चढ़ाई (यदि पैदल जाना हो, तो) चढ़नी पड़ती है। यदि वाहन है, तो घुमावदार मार्ग से पाल्डीछीना पहुँचना होता है, जहाँ से यह स्थान ढलान पर दिखाई पड़ता है।

स्वामीजी घोड़े से यहाँ आते-जाते थे, जो उस समय यातायात का प्रमुख साधन था। जब उन्होंने यहाँ निवास किया था, तब यह स्थान घने वन और फल-फूलों से पूर्ण था, जहाँ रात्रि में बाघ आदि पशुओं का आतंक रहता था। इसलिए शिकारी कुत्तों को सुरक्षा हेतु रखा जाता था। स्वामीजी स्वयं अपने २ जून, १८९७ के पत्र में लिखते हैं, ''मैं एक सुन्दर बाग में रहता हूँ, जो अलमोड़ा के एक व्यापारी का है। परसों रात एक चीता यहाँ आ धमका और बाग में रखी गई भेड़-बकरियों में से एक बकरा उठा ले गया। नौकरों का शोर-गुल और रखवाली करने वाले कुत्तों का भौंकना बड़ा ही भयावह था। जब से मैं यहाँ ठहरा हूँ, कुत्ते रात भर जंजीर से बाँधकर रखे जाते हैं, ताकि उनके भौंकने की जोर की आवाज से मेरी नींद में बाधा न पड़े।'' (वि०सा० ६/३३१)

''निवास हेतु दो बड़े भवन अब जीर्ण हो गये हैं। एक सुन्दर तालाब, घोड़ों का निवास और भोजनालय बना है। भीतर वर्तमान मालिकों का सामान, एक लोहे की खाट और नक्काशीदार कुर्सी-मेज भी है। स्वामीजी १ जून को अपने पत्र में स्वामी शुद्धानन्द को लिखते हैं, आजकल मैं एक व्यापारी के बाग में रह रहा हूँ, जो अलमोड़ा से कुछ उत्तर दिशा में है। हिमालय के हिम शिखर मेरे सामने हैं। वे सूर्य के प्रकाश में रजत राशि के समान आभासित होते हैं और हृदय को प्रसन्न करते हैं। शुद्ध हवा, नियमानुसार भोजन और यथेष्ट व्यायाम करने से मेरा शरीर बलवान तथा स्वस्थ हो गया है।'' (**क्रमशः**)

अपने को ईश्वर की उत्कृष्ट रचना बनाएँ

डॉ. विनीता दीक्षित द्विवेदी, वाराणसी

जीवन जीने की एक कला होती है, जिसे जानना अनिवार्य होता है। जीवन तो सभी जीते हैं, कोई हँस के, कोई रो के, और किसी के लिये यह जीवन भार बन जाता है। हम दूसरों को भले ही धोखा दे दें, लेकिन यदि सचेत हों, तो स्वयं को धोखा नहीं दे सकते। किन्तु यदि समाज के साथ-साथ हम अपनी दृष्टि में भी अच्छे हों, नैतिक हों, तो हमारा जीवन सुगन्धित होता जायेगा। स्वत: हमारे अन्दर एक सकारात्मक ऊर्जा बढ़ती जायेगी। ईश्वरीय सन्निकटता का आभास होने लगता है। इसमें अधिक कर्मकाण्ड की नहीं, हमें अपनी मन:स्थिति को थोड़ा ध्यान से देखने की आवश्यकता होती है। यह धैर्य का काम है। हमें सत्य की खोज हेतु अपने जीवन को समर्पित करना है, यही हमारा लक्ष्य है, ऐसा दृढ़ विश्वास रखें। यह हमारे और ईश्वर के बीच की बात है, इसमें कहीं कोई धोखा नहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में श्रीदुर्गा, श्रीसरस्वती, श्रीलक्ष्मी – त्रिदेवियाँ विराजमान हैं। यदि हम कलुषता, राग-द्वेष-ईर्ष्या आदि दुर्भावनाओं से ग्रस्त रहेंगे, तो निश्चय ही ये देवियाँ घुटन महसूस करेंगी। हम दैवी गुणों से वंचित हो जाएँगे और ईश्वरीय सुख का आनन्द नहीं ले पायेंगे।

यदि हमारा अन्त:करण शुद्ध होगा, तो हमारे अपनत्व की सीमा विस्तृत होती है और हमारी संकीर्णता दूर हो जाती है। उदाहरणार्थ हम अपने बच्चों का पालन-पोषण, व्यय आदि तो करते ही हैं, किन्तु हमारा हृदय उदार होने पर हम स्नेह, शुभकामना और सही सीख तो परिवेश के अन्य बच्चों को भी दे सकते हैं। इस प्रकार हमारी भावनाएँ शुद्ध और उदार होती जाएँगी। हम सारी प्रकृति से जुड़ने लगते हैं। दूसरों के दुख-दर्द का हमें अनुभव होने लगता है। हम तुच्छ निजी स्वार्थ से उठकर अपने पड़ोस, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण मानवता के बारे में सोचने लगते हैं।

हम नि:शुल्क मिलनेवाली सूर्य की ऊर्जा के प्रति कृतज्ञ रहते हैं। प्रदूषण के प्रति सचेत हो जाते हैं। धरती के प्रति माँ जैसी संवेदना जागृत होती है। जब हम कोई फल खाते हैं, तो हमें भान होता है कि हम केवल एक सौ बीस रुपये किलो वाला सेब नहीं खा रहे हैं। तब हममें यह भावना आती है कि प्रकृति माता ने इसमें प्राणियों को पुष्ट करने के लिए सूरज की ऊष्मा, मिट्टी और वायुतत्त्व इसमें संचित किया है। इस तरह हम हमेशा ईश्वर से जुड़े रहते हैं। हम अपनी चेतना को विकसित कर अपनी दृष्टि बदल देते हैं। रसोई के बचे भोज्य पदार्थों को कूड़ेदान में न फेंककर हम पशुओं के लिए रखेंगे। हम सदा कृतज्ञभाव से पूर्ण रहेंगे। किसी व्यक्ति, वस्तु या स्थिति पर दोषारोपण नहीं करेंगे। अपनी आलोचना करनेवालों को भी सम्मान देंगे और उनके प्रति करुणाभाव रखेंगे। ईश्वर के प्रति कृतज्ञ होंगे कि मुझे अपनी कमी का पता लग सका और अहंकार धुल गया। मन इतना सकारात्मक हो जाता है कि कालचक्रानुसार जीवन में घटित अप्रिय घटनाओं में भी अपना मंगल और प्रभु-कृपा दिखती है। यही हमारे आन्तरिक विकास का लक्षण है। इस प्रकार हम स्वयं को ईश्वर की सच्ची सन्तान बना सकेंगे।

अन्तर्जगत में हम इतने व्यवस्थित हो चुके होते हैं कि हमारी नकारात्मक भावना सकारात्मक में बदलकर जीवन को सुगठित, सुव्यवस्थित करने में लग जाती है। हम अपनी सूक्ष्म अन्त:ध्वनि सुन लेते है।

विद्यार्थी अपना लक्ष्य अध्ययन में, गुरुजनों, महापुरुषों के वचनों व अनुभवों से अधिकतम सीखने में समय का सदुपयोग करता है । गृहिणी गृहकार्य में दक्ष, नागरिक प्रबुद्ध, अधिकारी और कर्मचारी सच्चाई से कर्मनिष्ठ होते हैं। चाहे कोई किसी भी उम्र, शैक्षिक, आर्थिक और सामाजिक स्तर से सम्बन्धित हो, वह ईमानदार कृतज्ञ, वीर, और आत्मविश्वासी होगा। तब हमारा समग्र जीवन, धीर, गम्भीर कर्मयोगी पुरुषार्थी का आकार ग्रहण करने लगता है। कर्मयोगी की मन की तरंगें शान्त होती हैं। मन विमल, शुद्ध होने पर प्रशान्त होने लगता है। उसमें विवेक जाग्रत होता है। विवेक से हम सत्यस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार करने में सक्षम होते हैं। हम अपने जीवन के पारलौकिक लक्ष्य परमेश्वर को पाकर समस्त संशयों, बन्धनों और दुखों से मुक्त हो जाते हैं और अपने मानव-जीवन को धन्य बना लेते हैं। ऐसा होने पर ही हम ईश्वर की उत्कृष्ट रचना कहलाने के सच्चे अधिकारी होंगे। ○○○

चैतन्य का गुंजन

कंचन

प्रथम अंगड़ाई हमने अनंत-असीम के आंगन में ली है। तब से वह अनंतता, वह असीमता हमें विरासत में मिली है। लेकिन जाने कब और कैसे हमने उसे काट-छाँट कर ससीम बनाना शुरू किया। हम देश के, प्रांत के, धर्म-जाति के, वर्ण-भाषा आदि के अनेक खाँचों में अपने को बैठाने लगे। उससे भी जी नहीं भरा, तो सतत कतरते-कतरते इतने छोटे हो गये कि एक निरर्थक कतरन ही बन गये। और फिर उसी को बड़े गर्व व जतन से सहेजने लगे।

लेकिन कई बार वह व्यापकता, विराटता हमें क्षुद्रता से ऊपर उठाने के लिये अंतरतम की गहराई में उतरकर विद्यमान प्रतीत होती है। तब दीखता है कि चैतन्य का अखंड प्रवाह हमारे आसपास गुंजन कर रहा है। अगणित वस्तुओं और आविर्भावों में उसी की आनन्दपूर्ण लीला चल रही है। इस त्रिभुवन में उसी शिव-स्वरूप का 'सत्य और सौन्दर्य' का नर्तन चल रहा है।

इस अनंत ब्रह्माण्ड में हमारे चर्मचक्षु भला कितना देख सकते हैं? फिर भी जो दीखता है, वह कम दिव्य, भव्य, अद्‌भुत नहीं है। हमारे चहुँ ओर ईश्वर का भण्डार ही खुला पड़ा है। हमारी अभिमुखता हो, तो एक दैवी संदेश का स्पर्श होगा।

निरभ्र नील नभ में टिमटिमाती तारिकाओं की मानो कशीदाकारी ही की गयी हो। उनका न आदि है, न अन्त। उनके रम्य और हृदयंगम झिलमिलाहट से अंतर झंकृत हो उठता है । हम पहचान सकें, तो देखेंगे कि हमारे भी भीतर एक नन्हीं-सी ज्योति प्रभु ने प्रकट की है, तो क्या वह किसी को धीरे से सहला सकती है? किसी को हताशा-निराशा के गर्त से ऊपर उठने में सहायक हो सकती है? भोर के उजाले-सी जीवन में नवसंचार कर सकती है?

प्रकृति का एक अनुपम उपहार है इन्द्रधनुष। बारिश में जब कभी उसका दर्शन होता है, तो मन-मयूर नाच उठता है। उन सतरंगों का एक अनोखा ही आकर्षण है। वे सारे रंग सृष्टि में विविध रूपों में फैले हुए हैं। हमारे भीतर भी वे हैं। उसे हम परख सकें, सप्तरंगों की विविध छटाओं को मुक्तहस्त से लुटा सकें, तो पता नहीं कितने बेरंगों में रंग भरा जा सकता है। लेकिन उन्हें अपने तक ही सीमित रखने के प्रयास में हम खुद बदरंग बनते जा रहे हैं।

हिमालय की गगनचुंबी चोटियाँ हमें उन्नति के शिखर पर ले जाने को व्यग्र हैं। उसकी ऊँचाई सबको आमंत्रण देती-सी प्रतीत होती है। उस पर चढ़नेवाले भले अनेकों हों, लेकिन उसकी ऊँचाई आत्मसात् करनेवाले कितने होंगे? हम तो अपने बौनेपन से इतने चिपके हैं कि उस ऊँचाई का स्पर्श करने की भी हिम्मत नहीं होती। हिमालय की ऊँचाई के कारण ही उसके गह्वर से निःसृत झर-झर बहते झरने, सर-सर मधुर गान करती हुई सरिताएँ मानव मन को आप्लावित करती हुई शान्ति प्रदान करती हैं। उनके पवित्र, पावन-प्रवाह में अन्तर्बाह्य कलुष धुल जाता है। वे गुनगुनाती हुई संकेत देती हैं कि हम तो जन्म से लेकर अन्तिम बूँद तक तरलता, शीतलता, प्रसन्नता मुक्तहस्त से बाँटती हैं, उसी में हमारे जीवन की सार्थकता है, तुम कब ऐसे बनोगे? अगर हमारा हृदय भी विकसित होकर द्रवित हो जाय, तो उसमें से भी स्नेह का निर्झर फूट निकलेगा। फिर वह एक स्थान पर सिमटा नहीं रह सकेगा। वह तो कल-कल गान करता हुआ अपने को लुटाने सरपट दौड़ पड़ेगा। तब न जाने कितने सूखे-मुरझाये जीवनों को संजीवन प्रदान करेगा !

हमारे ये नित्य परिचित शान्त-परोपकारी वृक्ष मौन प्रहरी जैसे निश्चल खड़े रहते हैं। उनके बिना हमारा जीवन ही सम्भव नहीं है। वे हमें फल-फूल देते हैं, छाया देते हैं, इतना ही नहीं मरकर लकड़ी भी देते हैं। संत सूरदास ने 'धन्य-धन्य ये पर उपकारी' कहकर इनकी महिमा का बखान करते हुए कहा है कि इन वृक्षों से सीखो – ये काटने वाले पर क्रोध नहीं करते, न सींचने वाले पर स्नेह। ... हम कब ऐसा समत्व प्राप्त कर सकेंगे? उन नन्हें-नन्हें पौधों पर झूमते-मुस्कुराते फूलों को देखकर भला कौन ऐसा होगा, जो प्रसन्नता से झूम नहीं उठेगा। वे अपना सारा सौन्दर्य, सुगंध, सुकोमलता आसपास बिखेर देते हैं, कुछ भी अपने पास नहीं रखते। हम भी अपने छोटे-से जीवन में ऐसा करने का प्रयत्न करें, तो जीवन कितना रमणीय और नमनीय बन जायेगा। उसके लिए बस हम अपनी हृदय की क्षमता को पहचानें और हृदय को विकसित तथा विस्तीर्ण करें।

पक्षियों की चहचहाहट, भ्रमरों का गुंजन, तृण-वनस्पतियों की हरियाली आदि जाने कितने आविर्भावों से सारी चराचर, सृष्टि हमें तुष्ट-पुष्ट करती है। चारों तरफ से यही संदेश गुंजन करता है कि जीवन केवल अपने उपभोग के लिये नहीं है। हममें जो भी विशेषताएँ हैं, वे दूसरों में बाँटने के लिए हैं। हमें तो 'देता है वह देव, रखता है वह राक्षस' का महामंत्र मिला ही है। हम बस देते जायँ, तो उसकी कृपा की वर्षा से भीगते जायेंगे, स्नेह-रश्मियों से उष्मा-ऊर्जा मिलेगी, पवन लहरियाँ प्यार से सहलायेंगी। फिर अणु-रेणु में प्रकट होकर भी जो अभी तक ओझल था, उसका रहस्य खुलेगा। तब हमारा प्रेम प्रार्थना बनेगा, स्नेह-साधना होगी। हमारा क्षण-क्षण, कण-कण दिव्य व मधुर बनेगा। फिर तो वह परम चैतन्य हमारी दृष्टि में, वाणी में, हृदय में बसेगा और जीवन को नया अर्थ मिलेगा। ○○

– ('मैत्री' से साभार)

विवेकानन्द जयन्ती समारोह, रायपुर – २०१६

स्वामी विवेकानन्द जी की १५३वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा आयोजित विभिन्न कार्यक्रमों का संक्षिप्त विवरण –

राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया गया – १२ जनवरी, २०१६, बुधवार को पं. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर और विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में विश्वविद्यालय के प्रांगण में शहर की राष्ट्रीय सेवायोजना की इकाई, विवेकानन्द विद्यापीठ के छात्र और अन्य महाविद्यालयों के छात्र-छात्राओं ने स्वामी विवेकानन्द जी को श्रद्धांजलि अर्पित की। विश्वविद्यालय के प्रशासन भवन के सामने स्वामी विवेकानन्द जी मूर्ति पर प्रो. शिव कुमार पाण्डेय, डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, कुलसचिव जी और नीता वाजपेयी ने पुष्प अर्पित किए। उसके बाद कार्यक्रम विश्वविद्यालय के प्रेक्षागृह में हुआ, जिसमें विभिन्न कॉलेजों के लगभग १००० छात्र-छात्राओं ने भाग लिया।

'स्वामी विवेकानन्द का जीवन-दर्शन' पर छात्र-छात्राओं ने व्याख्यान दिया। डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, अध्यक्ष विनियामक आयोग छत्तीसगढ़, रायपुर, प्रो. शिवकुमार पाण्डेय, कुलपति पं. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर और स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने बच्चों को सम्बोधित किया।

विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सत्संग भवन में प्रतिदिन सन्ध्या ६ बजे विभिन्न प्रकार की प्रतियोगिताएँ आयोजित की गयीं –

२१ जनवरी, २०१६ को अन्तर्महाविद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। विषय था – "**स्वामी विवेकानन्द की प्रासंगिकता**"। इस प्रतियोगिता में शासकीय नागार्जुन स्नातकोत्तर विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर के छात्र ऐश्वर्य पुरोहित और शासकीय जे. योगानन्दम् छत्तीसगढ़ महाविद्यालय, रायपुर के छात्र विजय बसेरा ने प्रथम पुरस्कार और रायपुर तकनीकि संस्थान की छात्रा सृष्टि शर्मा ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. मिता झा ने की। २२ जनवरी को अन्तर्महाविद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी, जिसका विषय था – "**शिक्षा सर्वोपयोगी कैसे बनेगी?**" कुशाभाउ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय, रायपुर की छात्रा कुमारी रजनी ठाकुर ने प्रथम और पं. जवाहरलाल नेहरु स्मृति चिकित्सा महाविद्यालय, रायपुर के छात्र शेषनारायण कनौजे ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता श्री एम. ए. खान ने की।

२३ जनवरी को अन्तर्महाविद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी, जिसका विषय था — "**इस सदन की राय में आधुनिक शिक्षा चरित्र-निर्माण में सहायक नहीं है।**" इसमें सृष्टि शर्मा ने प्रथम और ऐश्वर्य पुरोहित ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. प्रमोद कुमार शर्मा ने की। २४ जनवरी को '**इस सदन की राय में समाज के पिछड़े वर्गों के सर्वांगीण विकास के लिये विभिन्न नौकरियों में आरक्षण ही एकमात्र उपाय है।**' विषय पर अन्तर्विद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता थी। इसमें विपक्ष में बोलते हुए विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के छात्र नागेन्द्र खुटेल ने प्रथम और होलीक्रास उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, पेन्शनबाड़ा, रायपुर की छात्रा मेघना चन्द्राकर ने विपक्ष में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता श्री आर. जी. भावे ने की।

२५ जनवरी को अन्तर्विद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी। इसमें माँ बंजारी गुरुकुल विद्यालय, राँवाभाठा, रायपुर के छात्र अविनाश दूबे ने प्रथम और सतता सुन्दरी कालीबाड़ी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, रायपुर के सचिन गायकवाड ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता रविशंकर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रवीन्द्र ब्रह्मे ने की । २६ जनवरी को अन्तर्विद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का आयोजन था। विषय

था — "**स्वामी विवेकानन्द का सर्वधर्मसमभाव**"। इस प्रतियोगिता में होली क्रॉस सीनीयर सेकेन्ड्री स्कूल, रायपुर की छात्रा कुमारी मृगनयनी पाण्डेय ने प्रथम और विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के छात्र हेमन्त कुमार बारले ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। इसकी अध्यक्षता डॉ. विप्लव दत्ता ने की।

२७ जनवरी को 'अन्तर्माध्यमिक शाला विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता' थी, जिसका विषय था – '**भारत माँ के सच्चे सपूत : स्वामी विवेकानन्द**'। इसमें प्रथम पुरस्कार विजेता विवेकानन्द विद्यापीट, कोटा, रायपुर के छात्र राहुल निराला रहे और होली क्रॉस उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, रायपुर की छात्रा कुमारी रिंकी पाण्डेय ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता श्री एम. एन. श्रीवास्तव जी ने की। २८ जनवरी को 'अन्तर्माध्यमिक शाला वाद-विवाद प्रतियोगिता' आयोजित थी, जिसका विषय '**इस सदन की राय में जीवन में सफलता के लिए स्वार्थ की अपेक्षा परोपकार अधिक आवश्यक है**' था। इसमें दिल्ली पब्लिक स्कूल, रायपुर की छात्रा कुमारी खुशी दूबे ने प्रथम और विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के छात्र मिथिलेश नेताम ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. प्रवीण शर्मा ने की।

२९ जनवरी को 'अन्तर्प्राथमिक पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिता' थी। इसमें जतनदेवी डागा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, रायपुर की छात्रा कुमारी वृद्धि बैद ने प्रथम और विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के छात्र धर्मेन्द्र सिंह ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. विनोद कुमार लाल जी ने की। सभी प्रतियोगिता-सत्रों का आयोजन एवं संचालन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया।

३१ जनवरी, रविवार, २०१६ को आश्रम-प्रांगण में स्वामी विवेकानन्द जी की १५३वीं जयन्ती मनाई गयी। मन्दिर में प्रात:काल से विशेष पूजा-हवन, भोग, भजन-कीर्तन और व्याख्यान हुए। स्वामी सत्त्वस्थानन्द जी महाराज ने सुन्दर भजन गाए और सभी भक्तों को नाम-संकीर्तन गवाकर मन्दिर के वातावरण को दिव्य बना दिया।

विवेकानन्दय जयन्ती समारोह का उद्घाटन और पुरस्कार वितरण – १ फरवरी, सोमवार २०१६ को सन्ध्या ६ बजे 'विवेकानन्द जयन्ती समारोह' का उद्घाटन और पुरस्कार वितरण समारोह आयोजित हुआ। सभा के मुख्य अतिथि रायपुर के महापौर श्री प्रमोद दूबे ने कहा कि वे आज जो कुछ भी हैं, उसमें विवेकानन्द आश्रम का सबसे बड़ा योगदान है। वे आश्रम के विकास हेतु सदा तत्पर रहेंगे। स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने अतिथियों का स्वागत किया और बच्चों के माता-पिता को बच्चों में सुसंस्कार देने का निवेदन किया। सभा के मुख्य वक्ता डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने स्वामी विवेकानन्द पर ओजस्वी व्याख्यान दिया। सभा के अध्यक्ष रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के सचिव स्वामी व्याप्तानन्द जी ने बच्चों को पुरस्कार दिया और सभा को सम्बोधित किया। उसके बाद छात्रावास के बच्चों के गीत से सभा सम्पन्न हुई। मंच संचालन स्वामी देवभावानन्द जी ने तथा धन्यवाद ज्ञापन स्वामी व्रजनाथानन्द जी ने किया।

रामायण प्रवचन – स्वामी विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में २ फरवरी से ९ फरवरी, २०१६ तक श्रीरामकथा के विख्यात संगीतमय प्रवचनकर्ता मानस मर्मज्ञ स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती 'श्रीराजेश रामायणीजी' ने आश्रम-प्रांगण के भव्य पांडाल में 'रामचरित मानस में माताओं की भूमिका' और 'रामराज्य के निर्माण में मातृशक्ति का योगदान' पर उत्कृष्ट प्रवचन दिया।

मंदिर में भजनांजलि – ७ फरवरी को प्रात: १०.३० बजे स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती जी ने रामकृष्ण मन्दिर में भजन प्रस्तुत किए।

राहत कार्य – २४ जनवरी, २०१६ को रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के द्वारा रामकृष्ण आश्रम, कोनी बिलासपुर में ८५ कम्बल स्वामी सत्यरूपानन्द जी के कर-कमलों से वितरित किए गए।

श्रीमाँ सारदा की जयन्ती मनाई गई

१२ जनवरी, २०१५ को श्रीमाँ सारदा की १६२वीं जयन्ती मनाई गई। मंदिर में ५ बजे मंगल आरती, ७ बजे से विशेष-पूजा हुई, १०.३० बजे हवन हुआ। छात्रावास के बच्चों ने भक्तिपरक भजन गाए। संन्यासी, ब्रह्मचारियों और भक्तों के एक साथ आहुति के मन्त्रोच्चारण से मन्दिर गूँज उठा। ११.३० बजे भोग हुआ। १२ बजे सभी भक्तों को खिचड़ी प्रसाद दिया गया। शाम को मन्दिर में आरती के बाद सारदानाम संकीर्तन और भजन हुए। ○○○